प्रकाशक—
नाथूराम प्रेमी
हिन्दी-ग्रन्थ-रत्नाकर कार्यालय
हीराबाग, पो० गिरगाँव, बम्बई ४

चौथी बार
जून, १९५१

मूल्य डेढ़ रुपया

मुद्रक—
रघुनाथ दिपाजी देसाई,
न्यू भारत प्रिंटिंग प्रेस,
६ केलेवाड़ी, गिरगांव बम्बई ४.

षोड़शी

प्रथम अङ्क

प्रथम दृश्य

चण्डीगढ़—गाँवका रास्ता

[लगभग तीसरा पहर। चण्डीगढ़के संकीर्ण ग्राम्य-पथपर संध्याकी धूसर छाया उतरी आ रही है। पास ही बीजगाँवके जमींदारकी कचहरीके फाटकका कुछ हिस्सा दिखाई दे रहा है। दो राहगीर जल्दी जल्दी उस रास्तेसे चले जा रहे हैं। उन्हींके पीछे पीछे एक किसान खेतका काम-धन्धा खतम करके घर लौट रहा है। उसके बायें कंधेपर हल और दाहने हाथमें पैना (परैना) है। वह आगे आगे चलते हुए बैलोंको लक्ष्य करके कहता है, "धौला, सीधा चल बेटा, सीधा चल ! कलुआ, फिर, फिर ! फिर तूने पराये पेड़-पौधोंपर मुँह मारा !"

कचहरीके गुमाश्ते एककौड़ी नंदीने धीरे धीरे प्रवेश किया और वह उत्कंठित आशंकासे रास्तेके एक तरफ गरदन उचकाकर किसी एक चीजको देखनेकी कोशिश करने लगा। उसके पीछेके रास्तेसे जल्दी जल्दी विश्वम्भरने प्रवेश किया। वह कचहरीका बड़ा पियादा है, तगादेको गया था। उसे अकस्मात् खबर मिली कि बीजगाँवके नये जमींदार जीवानन्द चौधरी चण्डीगढ़ आ रहे हैं। लगभग दो कोसकी दूरीपर उनकी पालकी उतारकर उसके वाहक कुछ देरके लिए आराम कर रहे हैं,—अब आनेहीवाले हैं।]

विश्वंभर—नन्दी साहब, खड़े क्या कर रहे हो ? हुजूर आ रहे हैं जो !

एककौड़ी—(चौंककर मुँह फेरता है। यह दुःसंवाद घण्टे-भर पहले उसके भी कानोंमें पड़ा है। वह उदास कण्ठसे कहता है—) हूँ।

विश्वम्भर—'हूँ' क्या जी ? खुद हुजूर आ रहे हैं जो !

एककौड़ी—(विकृत स्वरमें) आते हैं तो मैं क्या करूँ ? कोई खबर नहीं; इत्तिला नहीं,—हुजूर आ रहे हैं ! हुजूर हैं, तो कोई सिर तो उतार नहीं लेंगे !

विश्वम्भर—(इस आकस्मिक उत्तेजनाका अर्थ न समझ सकनेके कारण क्षण-भर मौन रहकर कहता है—) अरे, तो क्या तुमने जान हथेलीपर रख ली है ?

एककौड़ी—जान हथेलीपर रखनेकी क्या बात है ! मामाकी जायदाद मिल गई है, तो कोई उसे बापकी जायदाद तो कहेगा नहीं ! तू जानता है विश्वम्भर, कालीमोहन बाबूने इसे निकाल दिया था, वे घरमें घुसने तक नहीं देते थे ! त्याज्य-पुत्र ठहरानेका सब ठीक-ठाक हो गया था कि अचानक चटसे मर गये, इसीसे तो जमींदार हुआ है ! नहीं तो आज कहाँ ठिकाना था ! मैं क्या जानता नहीं !

विश्वंभर—मगर जानकर फायदा क्या हो रहा है, कहो तो सही ? 'यह मामा नहीं है, भानजा है।' यदि यह बात उसके कानमें पड़ गई तो घरमें कोई दिआ-बत्ती करनेवाला भी बाकी न छोड़ेगा। पकड़ेगा और धाँयसे बन्दूककी गोलीसे उड़ा देगा ! इस बीच ऐसे कितनोंको मारकर जमीनमें गाड़ दिया है, जानते हो ? मारे डरके कोई बाततक नहीं करता।

एककौड़ी—हाँ,—बात तक नहीं करता ! मनमानी बरजानी है न !

विश्वंभर—अरे, शराबी जो ठहरा ! उसे क्या होश-हवास रहता है, या दया-माया है ! बन्दूक-पिस्तौल, छुरी-छुरोंके विना कहीं एक कदम भी नहीं हिलता। मार डाला तो फिर क्या करोगे, कहो तो सही ?

एककौड़ी—तू भी तो उस दिन सदर-बैठकमें गया था,—देखा था उसे ?

विश्वम्भर—नहीं, ठीकसे तो नहीं देखा, पर देखा ही समझो। येः गलमुच्छे, येः मूँछें, येः छाती, जवाफूल-सी लाल सुर्ख आँखें भट्टे जैसी भन भन करती घूम रही थीं—

एककौड़ी—विश्वम्भर, तो चल भाग चलें।

विश्वम्भर—अरे, भागकर उससे कै दिन बच सकते हो नन्दी-साहब ? झोंटा पकड़कर घसीट लायेगा और खोदकर जमीनमें गड़वा देगा।

एककौड़ी—क्या किया जाय फिर, बता ? वह शराबी आकर अगर कह बैठे कि शान्ति-कुंजमें रहूँगा, तो ?

विश्वम्भर—कितनी बार तुमसे कहा है नन्दी-साहब, ऐसा काम मत करो, मत करो, मत करो। सालों-साल बराबर झूठ-मूठ शान्ति-कुंजकी मरम्मत-खाते खरचा लिखते गये, इस गरीबकी बातपर जरा भी ध्यान नहीं दिया।

एककौड़ी—तू भी तो कचहरीका बड़ा सरदार है, तू भी तो—

विश्वम्भर—देखो, ये सब शैतानी जाल मत रचो, कहे देता हूँ। मेरे ऊपर कसूर लादा नहीं कि—अरे, वह एक पालकी दीख रही है!

[नेपथ्यमें वाहकोंकी आवाज सुनाई देती है। विश्वम्भर भागनेके लिए तैयार एककौड़ीका हाथ पकड़ लेता है और वह अपनेको छुड़ानेकी कोशिश करता हुआ कहता है—]

एककौड़ी—हाथ छोड़ न, हरामजादे!

विश्वम्भर—(आहिस्तेसे दबी ज़बानसे) भागते कहाँ हो ? पकड़ लिया तो गोलीसे मार डालेगा!

[इतनेमें पालकी सामने आ पहुँचती है। दोनों स्थिर होकर खड़े हो जाते हैं। पालकीके भीतर जमींदार जीवानन्द चौधरी बैठे हैं, उन्होंने अपना मुँह जरा-सा बाहर निकालकर पूछा—]

जीवानन्द—क्यों जी, इस गाँवमें जमींदारकी कचहरी किधर है, तुम कोई बता सकते हो ?

एककौड़ी—(हाथ जोड़कर) सभी जगह तो हुजूरका राज्य है।

जीवानन्द—मैं राज्यकी खबर नहीं जानना चाहता। कचहरीका पता जानते हो ?

एककौड़ी—जानता हूँ हुजूर! वह रही।

जीवानन्द—तुम कौन हो ?

[एककौड़ी और विश्वम्भर घुटने टेककर जमीनसे सिर लगाकर नमस्कार करते हैं और फिर दोनों उठकर खड़े हो जाते हैं।]

एककौड़ी—हुजूरका दास एककौड़ी नन्दी।

जीवानन्द—ओ-हो, तुम हो एककौड़ी !—चण्डीगढ़-साम्राज्यके सर्वेसर्वा ! मगर सुनो एककौड़ी, तुमसे एक बात कहे देता हूँ । मैं खुशामदकी बातें बिलकुल नापसन्द नहीं करता, यह ठीक है, लेकिन उसकी एक हद भी मुझे पसन्द है । इसे न भूल जाना । तुम्हारी कचहरीकी तहसील कितनी है ?

एककौड़ी—जी हुजूर, चण्डीगढ़ तालुकेकी आय होगी पाँच हज़ारके करीब ।

जीवानन्द—पाँच हज़ार ? अच्छा, ठीक ।

(वाहक पालकी नीचे उतारकर रख देते हैं । जीवानन्द उतरते नहीं, सिर्फ पैर बाहर निकालकर रख देते हैं और सतर होकर बैठकर कहते हैं—) अच्छी बात है । मैं यहाँ पाँच-छह दिन रहूँगा, मगर इसी बीचमें मुझे दस हज़ार रुपये चाहिए । एककौड़ी, तुम सब रिआयाको इत्तिला कर दो कि कल सबके सब कचहरीमें हाज़िर हों ।

एककौड़ी—जो हुक्म । हुजूरके हुकुमसे कोई गैरहाज़िर न रहेगा ।

जीवानन्द—इस गाँवमें बदमाश-उद्दण्ड रिआया भी कोई है, जानते हो ?

एककौड़ी—जी नहीं, ऐसा तो कोई,—सिर्फ एक तारादास चक्रवर्ती है,—लेकिन वह हुजूरकी रिआया नहीं है ।

जीवानन्द—तारादास कौन है ?

एककौड़ी—चण्डीगढ़का पुजारी ।

जीवानन्द—इसी आदमीने क्या दो साल पहले एक मुकद्दमेमें मेरे खिलाफ गवाही दी थी,—एक रिआयाकी तरफसे ?

एककौड़ी—(सिर हिलाकर) हुजूरकी निगाहसे कोई बात छिपी नहीं रहती । जी हाँ, यही है वह तारादास ।

जीवानन्द—हूँ । उस समय इसने बहुत रुपयोंके फेरमें डाल दिया था । कितनी ज़मीन लेकर रहता है वह ?

एककौड़ी—(मन-ही-मन हिसाब लगाकर) साठ-सत्तर बीघेसे कम नहीं ।

जीवानन्द—उसे तुम आज ही कचहरीमें बुलाकर कह दो कि बीघा-पीछे दस रुपये मेरी नज़रके चाहिए ।

एककौड़ी—(संकोचके साथ) जी, मगर वह तो छूट-पट्टीकी देवोत्तर* जमीन है हुजूर ।

*देवताके नामपर उत्सर्ग की हुई जमीन-जायदाद, जिसपर कोई कर नहीं लगता ।

जीवानन्द—नहीं, देवोत्तर जमीन इस गाँवमें एक बीता भी नहीं है। सलामी नहीं मिलनेसे जब्त कर ली जायगी।

एककौड़ी—आज ही उसके पास हुकम भेजवाता हूँ।

जीवानन्द—सिर्फ हुकम भिजवानेकी बात नहीं, रुपये उसे दो ही दिनके भीतर अदा कर देने होंगे।

एककौड़ी—मगर हुजूर—

जीवानन्द—मगर-वगर रहने दो एककौड़ी।—यही सीधी सड़क गई है न मेरे बरई-किनारेके शान्ति-कुंजको? महावीर, पालकी उठानेको कह।

[वाहक लोग पालकी उठाकर चल देते हैं।]

एककौड़ी—जो सोचा था वही हुआ रे विसम्भर! यह तो सीधा जाकर शान्ति-कुंजमें ही ठहरना चाहता है।

विश्वम्भर—नहीं तो क्या तुम्हारी कचहरीके मवेशी-खानेमें आके ठहरेगा?

एककौड़ी—वहाँ तो शायद घुसनेका रास्ता भी न होगा रे। और यदि दरवाजे-जंगले भी सब चोरी चले गये हों तो ताज्जुब नहीं। हो सकता है कि कमरेमें शेर-भालू घुसे पड़े हों। वहाँ क्या है क्या नहीं, सो मैं कुछ भी तो नहीं जानता रे विसम्भर!

विश्वम्भर—और मैं ही क्या जानता हूँ तुम्हारे दरवाजों-जंगलोंका हाल? और फिर शेर-भालुओंके पास तो मैं तहसील वसूल करने गया नहीं साहब!

एककौड़ी—अब इस रातके वक्त कहाँ तो बत्ती, कहाँ आदमी, कहाँ खाने पीनेका इन्तजाम—

विश्वम्भर—सड़कपर खड़े खड़े रोनेसे तो आदमी आ जुटेंगे, मगर बत्ती और खाने पीनेका इन्तजाम—

एककौड़ी—तुझे क्या! तू तो कहेगा ही रे पाजी, बदमाश, हरामजादा—

[प्रस्थान]

द्वितीय दृश्य

शान्ति-कुंज

[बरई नदीके किनारे बीज गाँवके जमींदार स्वर्गीय राधामोहनका बनवाया हुआ विलास-भवन शान्तिकुंज। मरम्मतके अभावसे आज वह टूटा-फूटा, सौन्दर्यहीन और खण्डहर-सा हो रहा है। उसमें एक कमरेके अन्दर एक तख्तपर बिस्तर बिछे हुए हैं। चद्दरके अभावमें उनपर एक कीमती सफेद दुशाला बिछा हुआ है। सिरहानेकी तरफ एक गोल टेबिल है जिसपर मोटी-सी एक जिल्ददार किताबपर अधजली मोमबत्ती चुपकी खड़ी है। उसके पास एक पिस्तौल पड़ी है। बगलमें एक स्टूल है जिसपर सोड़ाकी बोतल, शरबतसे भरा गिलास और बोतल रक्खी है। बोतल करीब करीब खतम हो चली है। पास ही एक सोनेकी घड़ी है जो चुरुटकी राखके लिए आधार बनाई गई है। अध-जली सिगरेटसे धुआँ निकल रहा है। सामनेकी दीवारपर दो नेपाली भुजालियाँ टँगी हुई हैं। एक कोनेमें दीवारके सहारे बन्दूक खड़ी है और उसके पास फर्शपर एक सियारकी लाश पड़ी है जिसकी देहसे खून बहते बहते सूख गया है। इधर उधर बिखरी हुई कई शराबकी बोतलें पड़ी हैं। एक डिशमें खाये हुएमेंसे कुछ जूठा बचा हुआ पड़ा है,—अभी तक वह साफ नहीं की गई है। उसके पास ही कीमती ढाकेका दुपट्टा, जो हाथ पोंछकर डाल दिया गया है, जमीनमें पड़ा लोट रहा है। जीवानन्द चौधरी बिस्तरपर एक करवटसे तिरछे लेटे हुए हैं। पाँयतेकी तरफका जंगला टूटा हुआ है। उसमेंसे बाहरसे पेड़की डालीका कुछ हिस्सा भीतर घुस आया है। दोनों तरफ दो दरवाजे हैं,—एक दरवाजा खोलकर जीवानन्दके सेक्रेटरी प्रफुल्लचन्द्र भीतर प्रवेश करते हैं।]

प्रफुल्ल—वह आदमी यहाँ भी आया था भाईसाहब!

जीवानन्द—कौन आदमी?

प्रफुल्ल—वही मद्रासी साहबका कर्मचारी जो ईखकी खेती और चीनीके कारखानेके लिए साराका सारा दक्षिणका मैदान खरीदना चाहता है। सचमुच ही क्या उसे बेच देंगे?

जीवानन्द—जरूर। मुझे रुपयोंकी बड़ी भारी जरूरत है।

प्रफुल्ल—मगर बहुत-सी रैयतोंका सत्यानाश हो जायगा।

जीवानन्द—सो होगा, पर मेरा तो सत्यानाश होते होते बच जायगा!

प्रफुल्ल—और एक सज्जन बाहर बैठे हुए हैं, उनका नाम है जनार्दन राय। यहाँ आनेके लिए कह दूँ?

जीवानन्द—नहीं भाई साहब, अभी रहने दो। साधु-दर्शन हर वक्त नहीं करना चाहिए,—शास्त्रोंमें इसका निषेध है।

प्रफुल्ल—(हँसकर) सुना है, खूब धनवान् आदमी हैं।

जीवानन्द—सिर्फ धनवान हीं नहीं, गुणवान् भी है। हाथचिट्ठा, खत-तमस्सुक, दलील-दस्तावेज, जो चाहे सो यह बना दे सकता है;—नकल नहीं, अनुकरण नहीं,—एक दम नया और अपूर्व;—जिसको कि 'सृष्टि' कहते हैं। महापुरुष व्यक्ति।

प्रफुल्ल—ऐसे लोगोंको प्रश्रय न देना चाहिए भाई साहब!

जीवानन्द—इसकी जरूरत नहीं प्रफुल्ल, ये अपनी प्रतिभासे जिस उच्चतामें विचरण करते हैं, हमारा प्रश्रय वहाँ तक पहुँच ही नहीं सकेगा।

प्रफुल्ल—सुना है, सारा मैदान आपका अकेलेका नहीं है भाई साहब, इस विषयमें,—

जीवानन्द—नहीं प्रफुल्ल, इस मामलेमें मैं तुम्हें बात न करने दूँगा। कर्जमें गले तक डूबा हुआ हूँ। अगर तुम्हारा वह भले-बुरेका भूत सरपर सवार हो गया, तो फिर रसातल पहुँचनेमें ज्यादा देर न होगी।

[एक गिलास शराब पीकर]

जीवानन्द—तुम सोचते होगे कि रसातल पहुँचनेमें अब देर ही क्या है? देर नहीं है, सो मैं जानता हूँ। और भी एक बात तुमसे ज्यादा जानता हूँ प्रफुल्ल,—इसका ओर-छोर भी नहीं है कहीं।

[प्रफुल्ल चुपचाप मुँह उठाकर देखने लगता है।]

जीवानन्द—यह तुममें बड़ा भारी दोष है प्रफुल्ल, निबटी हुई चीजको भी जब बिलकुल निबटती हुई सुनते हो तो तुम्हारी आँखें डबडबा आती हैं। जाओ तो भइया, जरा एक कौड़ीको भेज दो मेरे पास। और सुनो, तुम्हें एक बार सदरमें जाकर मद्रासी साहबसे बात-चीत पक्की करनी होगी, समझे?

प्रफुल्ल—(सिर हिलाकर) अभी तो वक्त है, आज भी जाया जा सकता है। साहबके साथ गाड़ी है।

जीवानन्द—अच्छी बात है, तो उन्हींकी गाड़ीमें चले जाओ।

[प्रफुल्लका प्रस्थान और एककौड़ीका प्रवेश]

जीवानन्द—रुपये वसूल हो रहे हैं एककौड़ी?

एककौड़ी—हो रहे हैं हुजूर।

जीवानन्द—तारादासने रुपये दिये?

एककौड़ी—आसानीसे देना नहीं चाहा। आखिर जब कान पकड़वाकर घुड़दौड़ और मेढ़की नाच नचानेका प्रस्ताव किया तब कहीं देनेको राजी होकर घर गया। आज देनेकी बात थी।

जीवानन्द—फिर?

एककौड़ी—महावीरसिंहके साथ हुजूरके पालकीवालोंको भेजा है उसे पकड़ लानेके लिए।

जीवानन्द—(शराब पीकर) ठीक किया। तुम लोगोंके यहाँ शायद विलायती शराबकी दूकान न होगी। खैर, कोई बात नहीं, जितनी मेरे पास है उससे एक दिनका काम तो चल ही जायगा। मगर, एक बात और भी है, एककौड़ी।

एककौड़ी—हुक्म कीजिए।

जीवानन्द—सुनो एककौड़ी, मैंने ब्याह,—हाँ ब्याह नहीं किया,—शायद आगे भी कभी न करूँगा। (थोड़ी देर बाद) मगर इसके मानी यह नहीं कि मैं कोई भीष्मदेव होऊँ—तुमने 'महाभारत' पढ़ा है या नहीं?—उसका भीष्मदेव बनकर मैं नहीं बैठा,—और शुकदेव भी नहीं बना,—अरे कुछ मतलब अतलब भी समझते हो एककौड़ी? हाँ, सो एक चाहिए, समझे!

(एककौड़ी मारे शरमके सिर झुकाकर जरा गर्दन हिला देता है।)

जीवानन्द—और सबोंकी तरह ऐरे-गैरसे ये सब बातें कहना-कहलाना मैं पसन्द नहीं करता, उससे धोखा हो जाता है। अच्छा, अभी जाओ।

एककौड़ी—मैं तारादासको देखूँ जाकर। वह इस बीचमें रियायाको कहीं बिगाड़ न दे। (जाने लगता है।)

जीवानन्द—रियाआको बिगाड़ देगा? मेरी मौजूदगीमें?

एककौड़ी—हाँ हुजूर, ऐसा कर सकते हैं ये लोग।

जीवानन्द—एक तारादासको ही तो मैं जानता था, उसमें फिर 'ये लोग' कौन आ कूदे ?

एककौड़ी—तारादासकी लड़की भैरवी। नहीं तो तारादास खुद उतना बुरा आदमी नहीं, असलमें लड़की ही सत्यानाशकी जड़ है। गाँवके जितने बदमाश-गुण्डे हैं, सब जैसे उसके गुलाम हैं।

जीवानन्द—अच्छा ? कितनी उमर है उसकी ? देखनेमें कैसी है ?

[कमरेमें क्रमशः संध्याका धुँधलापन छाने लगता है।]

एककौड़ी—उमर पचीस-छब्बीस हो सकती है। और रूपकी बात अगर पूछते हैं, तो उसे एक हट्टा-कट्टा सिपाही ही समझिए। न तो उसमें औरतोंकी-सी लौनी छवि है, और न वैसी गठन ही है। जैसे कोई लड़ाकू हथियार बाँधकर लड़ाई करने जा रहा हो। इसीसे तो गाँवके लोग समझते हैं कि गढ़की वे ही साक्षात् चण्डी हैं।

जीवानन्द—(उत्साह और कुतूहलसे सतर होकर बैठ जाता है।) कहते क्या हो एककौड़ी ? भैरवीका पूरा किस्सा खोलके बताना जरा, सुनूँ।

एककौड़ी—भैरवी तो किसीका नाम नहीं, हुजूर। चण्डीगढ़की मुख्य सेविकाओंकी उपाधि है यह। मौजूदा भैरवीका नाम षोड़शी है,—इसके पहले जो थी उसका नाम था मातंगिनी। माताके आदेशसे उनका सेवक कभी पुरुष नहीं हो सकता, हमेशासे स्त्रियाँ होती आई हैं।

जीवानन्द—अच्छा, ऐसी बात है क्या ? यह तो कभी सुना नहीं।

एककौड़ी—माताके आदेशसे ब्याहकी तीसरी रातके बाद फिर भैरवी पतिका स्पर्श तक नहीं कर सकती। इसीसे, दूर-देशसे किसी दुखी गरीबका लड़का पकड़ लाकर उससे ब्याहकी रस्म अदा कर दी जाती है और फिर उसे दूसरे ही दिन रुपये-पैसे देकर विदा कर दिया जाता है। फिर उसकी कोई छाँह भी नहीं देख सकता। यह नियम है, यही हमेशासे चला आ रहा है।

जीवानन्द—(हँसकर) कहते क्या हो एककौड़ी, एकदम देश-निकाला ? भैरवी मनुष्य है, रातको एकान्तमें एक गिलास सुधा उँड़ेलकर देना,—गरम-मसाला देकर जरा-सा महाप्रसाद बनाकर खिलाना,—कतई कुछ भी नहीं कर सकती ?

एककौड़ी—(सिर हिलाकर) जी नहीं हुजूर। माताकी भैरवी पतिका स्पर्श नहीं कर सकती,—लेकिन इसका मतलब यह थोड़े ही है कि पतिके सिवा

गाँवमें और कोई मर्द ही न हो। माता भैरवीको भी देखा है मैंने, और षोड़शीको भी देख रहा हूँ। लोग क्या ऐसे ही ख्वामख्वाह,—उसकी गवाही देखिए न,—बात-बातमें हुजूरके साथ ही मामला-मुकदमा लगा देती है!

जीवानन्द—औरत-महन्त ही जो ठहरी! इसमें कोई दोष नहीं। एककौड़ी, जरा बत्ती तो जला दो।

एककौड़ी—(बत्ती जलाकर) अब जाऊँ हुजूर?

जीवानन्द—अच्छा, जाओ। जरा वह किताब तो देते जाओ।

(किताब देकर प्रणाम करके एककौड़ी जाता है)

जीवानन्द (लेटकर पुस्तक पढ़नेमें मन लगाता है। थोड़ी देर बाद बाहर किसीके पैरोंकी आहट सुनाई देती है)

जीवानन्द—कौन?

सरदार—(षोड़शीको साथ लेकर भीतर आकर) साला तारादास तो भाग गया हुजूर, उसकी बेटीको पकड़ लाया हूँ।

जीवानन्द—(किताब पटककर भड़भड़ाकर उठ बैठता है और आश्चर्यके साथ कहता है–) किसको? भैरवीको? (कुछ देर बाद) ठीक किया। अच्छा, जा।

(सरदारका अपने अनुचर-पियादोंके साथ प्रस्थान)

जीवानन्द—तुम लोगोंकी आज रुपये देनेकी बात थी। रुपये लाई हो? (षोड़शीके गलेसे आवाज़ नहीं निकलती) नहीं लाई, मगर क्यों?

षोड़शी—हम लोगोंके पास हैं नहीं।

जीवानन्द—नहीं होनेसे तुम्हें रात-भर पियादोंके घरमें बन्द रहना पड़ेगा। इसके मानी समझती हो?

[षोड़शी दोनों हाथोंसे दरवाजेकी चौखट थामे हुए आँखें मींचकर अपनेको मूर्छित होनेसे बचानेकी कोशिश करने लगी। उसके भयानक विवर्ण चेहरेको जीवानन्दने देख लिया। एक मिनट-भर वह न जाने कैसा आच्छन्न-की तरह बैठा रहा। इसके बाद सहसा बत्ती हाथमें लेकर षोड़शीके पास पहुँचा। बत्ती उसके मुँहके सामने थामकर एकटक वह उसके गेरुआ-वसन, बिखरे हुए रूखे बाल, उसके फक पड़े ओठ और सबल स्वस्थ सरल शरीर,—सबको मानों वह अपनी दोनों फैली हुई आँखोंसे चुपचाप निगलने लगा। इसी तरह कुछ देर बीत जाती है।]

जीवानन्द—(लौटकर बत्तीको यथास्थान रखके शराबकी बोतलसे लगातार

कई गिलास शराब पीकर) तुम्हारा नाम षोड़शी है न ? (षोड़शी चुप रहती है) तुम्हारी उमर क्या है ? (कोई जवाब न पाकर कठोर स्वरमें) चुपकी साध लेनेसे कोई विशेष लाभ नहीं होगा। जवाब दो !

षोड़शी—(मृदु स्वरसे) मेरी उमर अट्ठाईस साल।

जीवानन्द—अच्छी बात है। यह बात अगर सच है तो इन उन्नीस-बीस वर्षोंसे तुम भैरवीत्व कर रही हो; बहुत सम्भव है, इस बीचमें तुमने काफी रुपया इकट्ठा कर लिया होगा। फिर दे क्यों नहीं सकतीं ?

षोड़शी—आपसे तो पहले ही कह चुकी हूँ कि मेरे पास रुपये नहीं हैं।

जीवानन्द—नहीं हैं तो और और लोग जैसा करते हैं, वैसा करो। जिनके पास रुपये हैं उनके पास जमीन गिरवी रखकर या बेचकर रुपये अदा करो।

षोड़शी—और लोग कर सकते हैं, जमीन उनकी ठहरी। मगर देवोत्तर सम्पत्ति गिरवी रखने या बेचनेका हक तो मुझे नहीं है।

जीवानन्द—(सहसा हँसकर) अरे लेनेका हक मुझे भी क्या खाक है ! एक कौड़ीका भी नहीं। फिर भी लेता हूँ, क्योंकि मुझे जरूरत है। यह 'जरूरत' ही संसारमें सबसे बड़ा असली हक है। तुम्हें भी जब कि देनेकी जरूरत है, तब,—समझ गईं ? (कुछ देर बाद) खैर, जाने दो, इतनी रातमें क्या अकेली घर जा सकोगी ? जिनके साथ आई हो, उनके साथ तो अब मैं तुम्हें भेजना नहीं चाहता।

षोड़शी—(विनयके साथ) आपका हुक्म मिलते ही मैं जा सकती हूँ।

जीवानन्द—(आश्चर्यके साथ) अकेली ? ऐसी अँधेरी रातमें ? बड़ी तकलीफ होगी तुम्हें ! (हँसने लगता है)

षोड़शी—नहीं, मुझे अब जाना ही होगा।

जीवानन्द—(हँसता हुआ) अच्छी बात है, रुपये न हों तो मत दो षोड़शी, उसे छोड़ और भी तो बहुत तरहसे—

षोड़शी—आपके रुपये, आपकी तरहें, आपके लिए ही मुबारिक रहें, मुझे जाने दीजिए !

[कई कदम आगे बढ़ती है, पर पियादोंको सामने कुछ दूरीपर बैठे देखकर वह खुद ही ठिठक कर खड़ी हो जाती है।]

जीवानन्द—(मुँह गुम्म करके कठोर स्वरमें) तुम शराब पीती हो ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—मैंने सुना है, तुम्हारे कई पुरुष मित्र हैं। सच बात है?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं, झूठी बात है।

जीवानन्द—(कुछ देर चुप रहकर) तुमसे पहलेकी सभी भैरवियाँ शराब पिया करती थीं,—सच है? मातंगी भैरवीका चरित्र अच्छा नहीं था,—अब भी उसके गवाह मौजूद हैं। सच या झूठ?

षोड़शी—(लज्जित मृदु स्वरमें) सच ही तो सुनती हूँ।

जीवानन्द—सुना है? अच्छी बात है। तो सहसा तुम ही क्यों परम्परा छोड़कर, गोत्र छोड़कर, भली बनना चाहती हो? (सहसा सतर होकर बैठके कठोर स्वरमें) औरतोंके साथ मैं बहस भी नहीं करता और न उनकी राय-गैरराय ही जानना चाहता हूँ। तुम अच्छी हो या बुरी,—बालकी खाल निकालकर उसका न्याय करनेके लिए भी मेरे पास वक्त नहीं है। मेरा कहना है, चण्डीगढ़की पुरानी भैरवियोंकी जैसे गुजर हुई है, तुम्हारी भी वैसे हो गुजर हो जाय तो काफी है। आज तुम इसी मकानमें रहोगी।

[हुकुम सुनकर षोड़शी वज्राहतकी तरह एकबारगी पत्थर-सी खड़ी रह जाती है।]

जीवानन्द—तुम्हारे मामलेमें किस तरह इतना सहन कर सका, मैं खुद नहीं जानता। और कोई बेअदबी करती तो उसे पियादोंके घर भेज देता। बहुतोंको ऐसा किया है।

षोड़शी—(अकस्मात् रो पड़ती है और गलेमें अंचल डालकर निहोरेके स्वरमें हाथ जोड़कर कहती है—) मेरे पास जो कुछ है, सब लेकर आज मुझे छोड़ दीजिए।

जीवानन्द—क्यों भला? ऐसा रोना-धोना भी मेरे लिए नया नहीं है, ऐसी भीख भी मैं नई नहीं सुन रहा हूँ। मगर उन सबके पति पुत्र थे,—उनकी बात तो कुछ कुछ समझमें भी आती थी, (षोड़शी मारे आशंकाके सिहर उठती है) मगर तुम्हारे तो वैसी कोई बला ही नहीं है। पन्द्रह-सोलह सालके अन्दर तुमने तो अपने पतिको आँखोंसे भी नहीं देखा। इसके सिवा तुम लोगोंके लिए इसमें कोई दोष भी नहीं है।

षोड़शी—(हाथ जोड़कर आँसुओंसे रुँधे हुए गलेसे) यह सच है कि पतिकी मुझे अच्छी तरह याद नहीं, लेकिन वे हैं तो सही! सच कहती हूँ आपसे,

मैंने आज तक कभी कोई भी अन्याय नहीं किया। दया करके मुझे छोड़ दीजिए,—

जीवानन्द—(आवाज़ देकर) महावीर—

षोड़शी—(मारे आतंकके रोकर) आप मुझे जानसे मार डाल सकते हैं, मगर—

जीवानन्द—अच्छा, ये बहादुरीकी बातें करना उन लोगोंकी कोठरीमें जाकर। महावीर—

षोड़शी—(जमीनपर लोटकर रोती हुई) किसीकी मजाल नहीं जो मेरे प्राण रहते मुझे यहाँसे ले जा सके। मेरी जो कुछ दुर्दशा हो,—मुझपर जितना भी अत्याचार हो, सब आपके सामने ही हो;—आज भी आप ब्राह्मण हैं, आज भी आप भले घरानेके, शरीफ खानदानके हैं।

जीवानन्द—(कठोर निष्ठुर हँसी हँसते हुए) तुम्हारी बातें सुननेमें तो बुरी नहीं हैं, लेकिन रोना देखकर मुझे दया नहीं आती। मैं बहुत सुना करता हूँ। औरतोंपर मेरा इतना लोभ नहीं,—अच्छी न लगनेसे उन्हें मैं नौकरोंको दे दिया करता हूँ। तुम्हें भी दे देता,—सिर्फ आज ही पहले-पहल मोह-सा पैदा हो गया है। ठीक मालूम नहीं पड़ता,—नशा उतरे विना ठीक अन्दाज़ नहीं बैठता।

महावीर—(दरवाजेके पास आकर) हुजूर!

जीवानन्द—(सामनेके किवाड़की ओर उँगलीसे इशारा करके) इसको आज रात-भरके लिए उस कोठरीमें बन्द कर दे। कल फिर देखा जायगा।

षोड़शी—(आँसू-भरी आँखोंसे) मेरे सर्वनाशके बारेमें जरा सोच देखिए हुजूर! कल मैं फिर किसीको मुँह भी न दिखा सकूँगी।

जीवानन्द—सिर्फ दो-एक दिन। उसके बाद दिखा सकोगी।—उफ् लीवरका दर्द आज सवेरेसे ही मालूम हो रहा था। अब अचानक जोरका बढ़ गया—अब ज्यादा दिक मत करो,—जाओ।

महावीर—(घुड़ककर) अरे उठ न लुगाई,—चल।

जीवानन्द—(जोरकी एक डाँट बताकर) खबरदार, सूअरका बच्चा, अच्छी तरह बात कर! फिर अगर कभी हमारे बगैर हुकुमके किसी औरतको पकड़ लाया तो बन्दूकसे उड़ा दूँगा। सिरका तकिया पेटके पास खींच औंधे पड़कर

दर्दके मारे अस्फुट आर्तनाद करके) आज-भरके लिए उस कोठरीमें बन्द रहो, कल तुम्हारे सती-पनका फैसला हो जायगा। ओफ्,—ए जाता क्यों नहीं, मेरे सामनेसे इसको हटा ले जा।

महावीर—(आहिस्तेसे) चलिए—

[षोड़शी आज्ञानुसार बगलवाली अँधेरी कोठरीमें जाना चाहती है कि—]

जीवानन्द—षोड़शी, जरा ठहरो,—प्रफुल्ल नहीं है, वह सदरको गया है, तुम पढ़ना जानती हो ?

षोड़शी—जानती हूँ।

जीवानन्द—तो जरा एक काम करती जाओ। वह जो बाक्स है, उसमें एक छोटा-सा कागजका बाक्स है। उसमें कई छोटी-बड़ी शीशियाँ हैं, जिसपर 'मरफिया' लिखा है, उसमेंसे जरा-सी सोनेकी दवा देती जाओ। मगर खूब होशियारीसे। बड़ा खतरनाक ज़हर है वह। महावीर, जरा बत्ती दिखा देना।

[महावीर बत्ती दिखाता है।]

षोड़शी—(बत्तीके उजलेमें काँपते हुए हाथसे शीशी निकाल कर) कितनी देनी होगी ?

जीवानन्द—(तीव्र वेदनासे अव्यक्त ध्वनि करके) कहा तो तुमसे, बहुत ही थोड़ी। मुझसे उठा भी नहीं जाता, मेरे हाथोंका ठीक नहीं, आँखोंका भी ठीक नहीं। उसीमें एक काँचकी चम्मच-सी पड़ी होगी, उससे आधीसे भी कम देना। जरा भी ज्यादा दे दिया तो फिर वह नींद तुम्हारी चण्डीके बापके छुटाये भी न छूटेगी।

[नाप ठीक करनेमें षोड़शीके हाथ काँपने लगते हैं। अंतमें बहुत जतनसे बड़ी सावधानीके साथ निर्देशानुसार दवा लेकर पास आकर खड़ी हो जाती है।]

जीवानन्द—(हाथ बढ़ाकर उस जहरको हाथमें लेकर मुँहमें डालते हुए) बहुत कम ही दी है, असर न करेगी शायद। अच्छा, इतनी ही रहने दो।

[षोड़शीने बगलवाली कोठरीमें पैर रखा ही था कि इतनेमें एककौड़ीने अत्यन्त व्यस्त और व्याकुल भावसे प्रवेश किया और इधर उधर देखकर वह जीवानन्दके कानके पास जाकर चुपकेसे कुछ कहने लगा। जीवानन्दके चेहरेपर विशेष परिवर्तनका भाव दिखाई देता है। षोड़शी दरवाजेके पास स्तम्भित होकर खड़ी रह जाती है।]

जीवानन्द—(हाथ हिलाकर षोड़शीके प्रति) तुम्हें कोई डर नहीं, मेरे पास

आओ। (पास आनेपर) पुलिसने मकान घेर लिया है,—मजिस्ट्रेट साहब फाटकके भीतर घुस आये हैं, आ ही पहुँचे समझो। (षोड़शी चौंक उठती है) जिलेके मजिस्ट्रेट टूरपर निकले हैं, कोस-भर दूर कैम्प डाला है। तुम्हारे पिताने रातहीको उनके पास जाकर सब हाल कहा है। सिर्फ इतनेहीसे इतना न होता, किन्तु साहब खुद भी मेरे ऊपर बहुत खफा हैं। उन्होंने पिछले साल दो बार जालमें फँसानेकी कोशिश की थी, पर मैं फँस न सका,—आज एकबारगी हाथों हाथ पकड़ लिया है। (जरा हँस देता है!)

एककौड़ी—(चेहरा फक पड़ गया है) हुजूर, अबकी बार तो हम लोगोंकी भी खैर नहीं।

जीवानन्द—हो सकता है। (षोड़शीके प्रति) बदला लेना चाहो तो यह अच्छा मौका है। मुझे जेल भी भिजवा सकती हो।

षोड़शी—इसमें जेल क्यों होगी?

जीवानन्द—कानून है। इसके सिवा के० साहबके पंजेमें फँसा हूँ। बादुड़-बगानकी मेसमें रहते हुए इसीके चक्करमें पड़कर मैं एक बार पन्द्रह बीस दिनके लिए हवालातमें भी रह चुका हूँ। किसी भी तरह जमानत नहीं ली,—जमानत तब देता भी कौन?

षोड़शी—(उत्सुक कण्ठसे) आप क्या कभी बादुड़-बगानके मेसमें रहे हैं?

जीवानन्द—हाँ। उस समय एक प्रणय-काण्डका नायक बना था,—नालायक आयान घोषने किसी तरह पिण्ड ही न छोड़ा,—पुलिसके सुपुर्द कर दिया। खैर, वह बहुत बड़ा किस्सा है! साहब मुझे भूला नहीं है,—खूब पहचानता है। आज भी भाग सकता था, मगर दर्दके मारे खाट पकड़ ली है, हिलनेकी भी कूवत नहीं।

षोड़शी—(कोमल कण्ठसे) क्या आपका दर्द कम नहीं हो रहा है?

जीवानन्द—नहीं। इसके सिवाय यह दर्द अच्छा होनेवाला नहीं है।

षोड़शी—(कुछ देर चुप रहकर) मुझे क्या करना होगा?

जीवानन्द—सिर्फ कहना होगा, तुम अपनी इच्छासे आई हो और अपनी इच्छासे यहाँ हो। इसके बदले तुम्हें मैं सारी देवोत्तर सम्पत्ति छोड़ दूँगा, हजार रुपये नगद दूँगा और नजरानेके रुपयोंकी तो कोई बात ही नहीं।

[एककौड़ी कुछ कहना चाहता है पर षोड़शीके मुँहकी ओर देखकर रुक जाता है]

षोड़शी—(सीधे देखकर) इस बातको कबूल करनेका मतलब क्या होता है, आप समझते हैं ? उसके बाद भी क्या मुझे जमीन-जायदाद और रुपये पैसोंकी जरूरत रह सकती है, आपको विश्वास होता है ?

जीवानन्द—(सफेद फक चेहरेसे) ठीक है, षोड़शी, ठीक है। जिन्दगीमें तुमने आज तक पाप नहीं किया और वह तुम कर भी नहीं सकतीं, यह सच है। (जरा हँसकर) रुपये-पैसेके बदले इज्जत नहीं बेची जा सकती, इस बातको तो मैं भूल ही गया था। सो ही सही; जो सच हो सो ही तुम कहना, —जमींदारकी तरफसे अब कोई अत्याचार तुमपर नहीं होगा।

[एककौड़ी व्याकुल होकर कुछ कहना चाहता है, मगर बन्द दरवाजेपर बार-बार धमाका सुनकर उसका चेहरा फक पड़ जाता है और वह चुप रह जाता है।]

जीवानन्द—(आहट करके) खुला है, भीतर आइए।

[दरवाजा खुला। मजिस्ट्रेट, इन्स्पेक्टर, कई कानिस्टबल और तारादास चक्रवर्ती प्रवेश करते हैं।]

तारादास—(भीतर घुसते ही रो रोकर) धर्मावतार, हुजूर, यह रही मेरी लड़की, माता चण्डीकी भैरवी। आपकी दया नहीं होती तो हुजूर, ये लोग रुपयोंके लिए मेरी लड़कीको मार डालते; धर्मावतार !

मजिस्ट्रेट—(षोड़शीको नीचेसे ऊपर तक देखकर) तुम्हारा ही नाम षोड़शी है ? तुम्हींको घरसे पकड़वाकर यहाँ बन्द कर रक्खा है इन्होंने ?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं, मैं अपनी इच्छासे आई हूँ। किसीने मेरी देहको हाथ नहीं लगाया।

तारादास—(चिल्लाकर उठता है) नहीं हुजूर, बिलकुल झूठ बात है,—गाँवभर गवाह है। बिटिया मेरी रसोई बना रही थी, आठ आठ पियादे जाकर मेरी बिटियाको मारते मारते घसीट लाये हैं !

मजिस्ट्रेट—(जीवानन्दकी तरफ कनखियोंसे देखकर) षोड़शी, तुम डरो मत, कोई डरकी बात नहीं, तुम सच बात कह दो। तुम्हें घरसे पकड़ लाये हैं ?

षोड़शी—नहीं, मैं अपने आप आई हूँ।

मजिस्ट्रेट—यहाँ आनेकी तुम्हें क्या जरूरत थी ?

षोड़शी—मुझे काम था।

मजिस्ट्रेट—इतनी रात बीते भी घर लौटनेमें देर हो रही थी ?

तारादास—(चिल्लाकर) नहीं हुजूर, सब झूठ बात है,-सब बनाई हुई, शुरूसे लेकर आखिर तक सब सिखाई हुई बातें हैं।

मजिस्ट्रेट—(उसकी तरफ ध्यान न देकर सिर्फ जरा मुसकराते हैं और मुँहसे सीटी बजाते हुए पहले बन्दूक और बादमें पिस्तौल उठाकर जीवानन्दसे—) I hope you have permission for fnis *

[धीरे धीरे घरसे बाहर प्रस्थान]

(तारादास हतज्ञानकी तरह स्तब्ध और मायाभिभूत-सा खड़ा रहा जाता है)

मजिस्ट्रेट—(नेपथ्यमें) हमारा घोड़ा ला।

[घोड़ेकी टापोंकी आवाज सुनाई देती है।]

तारादास—(अकस्मात् अपने हृदयविदारक रोदनसे सबको चकित करके पुलिस-कर्मचारियोंके पैरों पड़कर रोता है) बाबू साहब, मेरी क्या दशा होगी ! मुझे तो अब जमींदारीके लोग जिन्दा खोदके गाड़ देंगे !

इन्स्पेक्टर—(जो उमरमें जरा बड़े हैं, व्यस्त होकर चटसे कोशिश करके उसे हाथ पकड़कर उठा देते हैं और सदय कण्ठसे कहते हैं—) डर किस बातका महाराज, तुम जैसे रहा करते थे, वैसे ही रहो जाकर। स्वयं मजिस्ट्रेट साहब तुम्हारे सहायक हैं,—तुमपर अब कोई जुल्म नहीं कर सकता। (कनखियोंसे जीवानन्दकी ओर देखते हैं)

तारादास—(आँखें पोंछता हुआ) साहब तो गुस्सा होकर चले गये बाबू साहब !

इन्स्पेक्टर—(मुसकराकर) नहीं महाराज, गुस्सा नहीं हुए,—मगर हाँ, आजका यह मज़ाक वे आसानीसे भूल सकेंगे ऐसा नहीं मालूम होता। इसके सिवा हम लोग भी नहीं मरे हैं, थाना भी जैसा कुछ है, है ही। (कनखियोंसे जीवानन्दकी ओर देखकर कुछ देर बाद) अब चलो महाराज, चल दें। ऐसी रातमें जाना भी बहुत दूर है।

सब-इन्स्पेक्टर—(जो उमरमें जवान हैं, जरा हँसकर) लड़कीको छोड़कर महाराज क्या अकेले ही चलेंगे ?

[इस बातपर कानिस्टबिल तक सभी हँस पड़ते हैं। एककौड़ी छतके सोटोंकी तरफ एकटक देखता रहता है। तारादासकी आँखोंके आँसू लहमे-भरमें अग्नि-शिखामें परिणत हो जाते हैं।]

---

* मैं आशा करता हूँ कि इसके लिए तुम्हारे पास लाइसेन्स है।

तारादास—(षोड़शीकी ओर कठोर दृष्टिसे देखते हुए गरजकर) जाना है तो, मैं अकेला ही जाऊँगा। फिर इसका मुँह देखूँगा,—फिर इसको घरमें घुसने दूँगा, आप समझते हैं ?—

इन्स्पेक्टर—(हँसकर) तुम्हारी तबीयत, तुम मुँह न देखो,—कोई तुम्हें सिरकी कसम दिलाने न आयेगा, महाराज। मगर जिसका घर है उसे घरमें न घुसने देकर कोई नई आफत मोल न ले लेना।

तारादास—(उछलकर) घर किसका है ? घर मेरा है। मैंने ही इसे भैरवी बनाया है, मैं ही इसे निकाल बाहर करूँगा। चाबी सबकी इसी तारादासके हाथमें है। (ज़ोरसे अपनी छाती ठोककर) नहीं तो कौन है यह, जानते हैं ? सुनेंगे इसकी माकी—

इन्स्पेक्टर—(उसे रोककर) ठहरो, महाराज ठहरो, गुस्सेमें आकर पुलिसके सामने सब बातें नहीं कह डालनी चाहिए, इससे और आफतमें फँसना पड़ता है। (षोड़शीके प्रति) तुम जाना चाहती हो तो हम लोग तुम्हें सुरक्षित घर पहुँचा दे सकते हैं। चलो, अब देर मत करो।

[षोड़शी नीचेको निगाह किये चुपचाप खड़ी रहती है और गरदन हिलाकर जता देती है—नहीं।]

सब-इन्स्पेक्टर—(मुसकराकर) शायद अभी जानेमें देर है, न ?

षोड़शी—(मुँह उठाकर इन्स्पेक्टरकी ओर देखकर) हाँ, आप लोग जाइए, मेरे जानेमें अभी देर है।

तारादास—(उन्मत्त-सा होकर) देर है ? हरामज़ादी, तुझे अगर मार न डाला तो मैं मनोहर चक्रवर्तीका लड़का नहीं।

(उछलकर षोड़शीको मारनेके लिए लपकता है)

इन्स्पेक्टर—(उसे पकड़कर डाँटते हुए) फिर अगर ज्यादती की, ऊधम मचाया, तो तुम्हें थानेमें ले जाऊँगा। चलो, भले आदमीकी तरह घर चलो।

[तारादासको खींचते हुए इन्स्पेक्टर तथा अन्य सब पुलिस-कर्मचारी प्रस्थान करते हैं। पीछेसे एककौड़ी भी दबे पाँव बाहर निकल जाता है। दूरसे तारादासकी गर्जना और गाली-गलौज क्षीणसे क्षीणतर होती सुनाई देती है।]

जीवानन्द—(इशारेसे षोड़शीको और भी अपने पास बुलाकर) तुम इन लोगोंके साथ गई क्यों नहीं ?

षोड़शी—इन लोगोंके साथ तो मैं आई नहीं थी!

जीवानन्द—(कुछ क्षणोंतक नीरव रहकर) तुम्हारी सम्पत्तिकी छूटपट्टी लिख देनेमें दो चार दिनकी देर होगी, मगर रुपये क्या तुम आज ही ले जाओगी?

षोड़शी—दे दीजिए, ले जाऊँगी।

जीवानन्द—(विस्तरके नीचेसे नोटोंकी एक गड्डी निकल कर उन्हें गिनते हुए षोड़शीके मुँहकी तरफ बार बार देखता हुआ जरा हँसकर—) मुझे किसी बातमें शरम नहीं आती, मगर आज मुझे भी इन्हें तुम्हारे हाथमें देते हुए संकोच-सा मालूम होता है।

षोड़शी—(शांत नम्र कंठसे) लेकिन इन्हें देनेकी ही तो बात थी?

जीवानन्द—बात कुछ भी हो षोड़शी, मुझे बचानेमें तुमने जो कुछ खोया है, उसकी कीमत मैं रुपयोंसे लगा रहा हूँ! इसकी अपेक्षा तो मेरा न बचना ही अच्छा था।

षोड़शी—(जीवानन्दके मुँहकी ओर एकटक देखकर) पर औरतोंकी कीमत तो आप हमेशा इन्हींसे लगाते आये हैं! (जीवानन्द निरुत्तर रह जाता है और कुछ देर बाद फिर कहती है—) अच्छी बात है, आज अगर आपका यह सिद्धान्त बदल गया हो तो रुपये न हो रख ही दीजिए, आपको कुछ भी न देना होगा। लेकिन, मुझे क्या आप सचमुच ही नहीं पहचान सके? अच्छी तरह गौर करके देखिए तो जरा!

जीवानन्द—(चुपचाप देर तक निष्पलक दृष्टिसे देखकर, बादमें धीरे धीरे सिर हिलाकर) शायद पहचान सका हूँ। बचपनमें तुम्हारा नाम क्या अलका था?

षोड़शी—(सारा चेहरा चमक उठता है) मेरा नाम तो षोड़शी है। किसी भैरवीका दश महाविद्याओंके नामके सिवा और कोई नाम नहीं होता। पर अलकाकी आपको याद है?

जीवानन्द—(निरुत्सुक कण्ठसे) कुछ कुछ याद तो है! तुम्हारी माके होटलमें कभी कभी खाने जाया करता था। तब तुम छोटी थीं। मगर मुझे तो तुमने आसानीसे पहचान लिया?

षोड़शी—आसानीसे न सही, पर पहचान लिया है। अलकाकी माकी याद है आपको?

जीवानन्द—है। वे जीवित हैं?

षोड़शी—नहीं, करीब दस वर्ष हुए उन्हें काशी-लाभ हो चुका। आपको वे बहुत चाहती थीं न?

जीवानन्द—(उद्वेगके साथ) हाँ। एक बार विपत्तिके समय उनसे सौ रुपये उधार लिये थे, उन्हें शायद मैं चुका नहीं सका।

षोड़शी—हाँ, नहीं चुका सके। लेकिन आप इसके लिए मनमें किसी तरहका क्षोभ न रक्खें। कारण, अलकाकी माने वे रुपये आपको कर्जके तौरपर नहीं दिये थे, दामादको दहेजके तौरपर दिये थे। (कुछ देर चुप रहकर) कोशिश करनेपर यह भी याद आ सकता है कि वह दिन भी ठीक इसी तरहका विपत्तिका दिन था। आज षोड़शीका ऋण ही बड़ा भारी मालूम होता है, लेकिन उस दिन छोटी-सी अलकाकी कुलटा माका कर्ज भी कम भारी नहीं था, चौधरी साहब!

जीवानन्द—ऐसा ही समझ सकता अगर वे उन थोड़ेसे रुपयोंके लिए अपनी लड़कीसे व्याह करनेको मुझे मजबूर न करतीं।

षोड़शी—व्याह करनेके लिए उन्होंने मजबूर नहीं किया था, बल्कि आपने ही किया था। पर, खैर, जाने दीजिए इस गलीज आलोचनाको। आपने व्याह तो किया नहीं था,—एक मज़ाक़ किया था। कन्या-दानके बाद ही आप ऐसे लापता हुए कि उसके बाद शायद आज ही यह पहली मुलाकात है।

जीवानन्द—मगर उसके बाद तुम्हारा सचमुचका व्याह भी तो हो चुका है,—सुना है।

षोड़शी—इसके मानी होते हैं दूसरे किसीके साथ? यही न? पर निरुपाय बालिकाके भाग्यमें यह विडम्बना अगर हुई भी हो, तो भी आपके साथ उसका कोई सम्बन्ध नहीं है।

जीवानन्द—न सही, मगर तुम्हारी मा जानती थीं, तुम्हें सिर्फ तुम्हारे बापके हाथसे अलग रखनेके लिए ही उन्होंने एक—

षोड़शी—व्याहकी लकीर खींच दी थी? हो सकता है। अलकाकी मा भी जीवित नहीं, और मैं ही अलका हूँ या नहीं, इतने दिनों बाद इस विषयकी दुश्चिन्ता करनेकी भी आपको जरूरत नहीं।

जीवानन्द—(कुछ देर सिर झुकाये चुप रहनेके बाद) लेकिन, मान लो, अगर असल बात तुम सबके सामने प्रकट कर दो, तो—

षोड़शी—असल बात कौन-सी ? व्याहकी बात ? लेकिन वही तो झूठ है। इसके अलावा वह समस्या अलकाकी है, मेरी नहीं। सारी रात यहाँ बिता जानेके बाद वह कहानी सुनानेसे भी षोड़शीके सर्वनाशकी मात्रा रत्ती-भर कम न होगी।

जीवानन्द—(कुछ क्षण नीरव रहकर) षोड़शी, आज मैं इतना नीचे उतर गया हूँ कि गृहस्थकी कुल-वधूकी दुहाई देनेपर तुम मन ही मन हँसोगी, मगर उस दिन अलकाको व्याहके उसे बीजगाँवके ज़मींदार-वंशकी कुल-वधूके तौरपर समाजके सरपर लाद लेना क्या अच्छा काम होता ?

षोड़शी—सो तो मैं ठीक नहीं जानती; लेकिन, सच्चा काम होता, यह मैं जानती हूँ। पर मैं झूठमूठ ही बक रही हूँ। अब ये सब बातें आपके सामने कहना व्यर्थ है। मैं जाती हूँ, कोई चीज़ देनेकी कोशिश करके अब आप और ज्यादा मेरा अपमान न कीजिएगा।

जीवानन्द—(एककौड़ीको घुसते देख, उसके प्रति) एककौड़ी, तुम्हारे यहाँ कोई डाक्टर है ? एक बार खबर भेजकर बुलवा सकते हो ? वे जो चाहेंगे वही दिया जायगा।

एककौड़ी—डाक्टर है क्यों नहीं हुज़ूर, हमारे यहाँ वल्लभ डाक्टरकी खूब चलती है, हाथमें जस भी खूब है। (षोड़शीकी तरफ देखने लगता है)

जीवानंद—(व्यग्र-कण्ठसे) उन्हें बुलवाओ एककौड़ी, अब एक मिनटकी भी देर मत करो।

एककौड़ी—मैं खुद ही जाता हूँ। लेकिन हुज़ूरको अकेला—

जीवानन्द—(दुःसह दर्दके मारे दूसरे ही क्षण चेहरा फक पड़ जाता है और औंधा पड़ जाता है) ओऽऽफ्, अब नहीं सहा जाता।

षोड़शी—तुम वल्लभ डाक्टरको ले आओ एककौड़ी, यहाँ जो कुछ करना होगा मैं कर लूँगी।

[एककौड़ी घबराहटके साथ बाहर चला जाता है।]

जीवानन्द—(कुछ देरतक औंधे पड़े रहनेके बाद मुँह उठाकर) डाक्टर नहीं आया ? कितनी दूर रहता है, मालूम है ?

षोड़शी—पास ही रहते हैं, मगर तीन ही चार मिनटमें थोड़े ही आ सकते हैं।

जीवानन्द--अभी कुल तीन ही चार मिनट हुए हैं ? मैंने सोचा, आधा घण्टा हुआ होगा,--या इससे भी अधिक देरसे एककौड़ी उन्हें बुलाने गया है। (औंधा पड़ रहता है) हो सकता है कि वे भी डरके मारे यहाँ न आवें अलका !

(उसके कण्ठस्वर और आँखोंकी दृष्टिमें निराशाकी सीमा नहीं रहती है।)

षोड़शी—(कुछ देर चुप रहकर स्निग्ध स्वरमें) डाक्टर आयेंगे क्यों नहीं !

जीवानन्द—शायद अब मैं बचूँगा नहीं। मुझे साँस लेनेमें भी तकलीफ हो रही है। मालूम होता है दुनियामें अब हवा रही ही नहीं।

षोड़शी—आपको क्या बहुत कष्ट हो रहा है ?

जीवानन्द—हूँ। अलका, मुझे तुम क्षमा करो। (जरा ठहरकर) ईश्वर या भगवानको मानता नहीं,—इसकी जरूरत भी नहीं पड़ी। पर थोड़ी ही देर पहले मैं मन ही मन उन्हें पुकार रहा था। जिन्दगीमें मैंने बहुत पाप किये हैं, जिनका कोई ओर-छोर नहीं। आज रह रह कर वार बार यही खयाल आ रहा है कि सब कर्जा सिरपर लादे जाना पड़ेगा। (क्षणभर ठहरकर) मनुष्य अमर नहीं है और मरनेकी उमरपर भी किसीने निशान लगाकर नहीं रख छोड़ा,—पर यह दर्द अब मुझसे नहीं सहा जाता—ओऽऽफ़,—मइयारी !

[दर्दकी तीव्रतासे सारा शरीर ऐंठने-सा लगता है। षोड़शी जरा इतस्ततः करके बिछौनेके पास बैठ जाती है और अपने आँचलहीसे उसके माथेका पसीना पोंछकर, पंखेके अभावमें आँचलहीसे हवा करने लगती है। जीवानन्द कोई बात नहीं कहता, सिर्फ उसका दाहिना हाथ लेकर अपनी गोदमें रख लेता है।]

जीवानन्द—(क्षणभर बाद) अलका,--

षोड़शी—आप मुझे षोड़शी कहकर पुकारें।

जीवानन्द—अब क्या अलका नहीं हो सकतीं ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—किसी दिन किसी भी कारणसे क्या--

षोड़शी—आप और कोई बात करिए। (जीवानन्द चुप रहता है। क्षणभर बाद—) तकलीफ जरा भी कम नहीं हुई ?

जीवानन्द—(गरदन हिलाकर) शायद जरा कम हुई है। अच्छा, अगर मैं बच गया तो क्या तुम्हारा कोई उपकार नहीं कर सकता ?

षोड़शी—नहीं, मैं संन्यासिनी हूँ,—मेरा निजी उपकार करना किसी तरह सम्भव नहीं।

जीवानन्द—अच्छा, ऐसा क्या कुछ है ही नहीं जिससे संन्यासिनी भी प्रसन्न हो सके?

षोड़शी—सो शायद है, पर उसके लिए आप क्यों आकुल हो रहे हैं?

जीवानन्द—(जरा क्षीण हँसी हँसकर) मुझमें बहुतेरे दोष हैं; पर यह दोष तो आज तक किसीने मुझे नहीं लगाया कि मैं पराये उपकारके लिए आकुल हो जाता हूँ। इसके सिवा, अभी कह रहा हूँ इसलिए अच्छा हो जानेपर भी यही कहूँगा, इसका भी कोई निश्चय नहीं,—यही तो जान पड़ता है! यही तो जान पड़ता है! सारी जिन्दगीमें शायद इसके सिवा और मेरा कुछ है ही नहीं।

[षोड़शी चुपचाप बैठी उसके माथेका पसीना पोंछने लगती है।]

जीवानन्द—(सहसा उसका हाथ पकड़कर) संन्यासिनीको क्या सुख-दुःख नहीं होता? वह जिससे खुश हो सके, दुनियामें ऐसी कोई चीज है ही नहीं?

षोड़शी—परन्तु, वह तो आपके हाथकी बात नहीं।

जीवानन्द—जो आदमीके हाथकी बात हो, ऐसी कोई बात?

षोड़शी—सो है। अच्छे होकर अगर किसी दिन आप पूछेंगे तो उसका जवाब दूँगी।

जीवानन्द—(उसके हाथको छातीके पास ले जाकर) नहीं, नहीं, अच्छे होनेपर नहीं,—इस कठिन बीमारीकी हालतमें ही मुझे बताओ। आदमीको मैंने बहुत सताया है, आज अपने दुःखके समय पराये दुःख, पराई आशाकी बात जरा सुन लूँ। अपने दुःखकी कोई सद्गति तो हो!

[बाहर पैरोंकी आहट सुनाई देती है। षोड़शी अपना हाथ धीरे-से अलग कर लेती है।]

षोड़शी—डाक्टर साहब शायद आ गये।

(डाक्टर और एककौड़ीका प्रवेश)

[डाक्टर साहब षोड़शीको देखकर एकबारगी आश्चर्य-चकित हो जाते हैं। पर बिना कुछ बोले-चाले चुपचाप रोगीके पास आकर रोगकी परीक्षा करने लगते हैं। षोड़शी इसी समय चली जाती है।]

एककौड़ी—अगर अच्छा कर सके डाक्टर साहब, तो इनामकी बात तो जाने दीजिए,—हम सभी आपके गुलाम बने रहेंगे।

डाक्टर—(परीक्षा समाप्त करके) बदपरहेजी कर-करके बीमारी पैदा कर ली है। सावधानीसे काम न लिया गया तो पिलही या लीवर पक सकता है, और उसमें ख़तरा है, पर अभीसे सावधान हो जानेसे नहीं भी पक सकता है और तब खतरा भी कम है। पर, इतना निश्चित है कि दवा खाना जरूरी है।

जीवानन्द—इस हालतमें कलकत्ता जाना सम्भव है या नहीं, सो बता सकते हैं ?

डाक्टर—अगर जा सकें तो सम्भव है, नहीं तो किसी भी तरह सम्भव नहीं।

जीवानन्द—यहाँ रहनेसे आराम हो सकता है या नहीं, बता सकते हैं ?

डाक्टर—(विज्ञकी तरह सिर हिलाकर) जी नहीं हुजूर, सो तो नहीं कह सकता। पर हाँ, यह निश्चय है कि यहाँ रहकर भी अच्छे हो सकते हैं, और सम्भव है कलकत्ता जाकर भी आराम न हो।

एककौड़ी—हुजूरका दर्द—

डाक्टर—यह दर्द अचानक बढ़ जाया करता है और फिर अचानक कम हो जाता है। कल सवेरे ही हुजूर स्वस्थ हो सकते हैं। पर यह निश्चित है कि मुझे फिर एक बार आना पड़ेगा।

[एककौड़ीसे 'विज़िट' लेकर डाक्टर चले जाते हैं]

जीवानन्द—क्या होगा एककौड़ी ?

एककौड़ी—डरकी क्या बात है हुजूर, दवा अभी आती है। वल्लभ डाक्टरका एक शीशी मिक्स्चर पीते ही सब अच्छा हो जायगा।

जीवानन्द—(षोड़शी जिस दरवाजेसे जरा पहले निकल गई थी, उस तरफ उत्सुक दृष्टिसे देखकर) उनको जरा भेजकर—

[एककौड़ी बाहर जाकर क्षण-भर बाद फिर भीतर आ जाता है।]

एककौड़ी—वे नहीं हैं, घर चली गई हुजूर। सवेरा होनेको है।

जीवानन्द—(व्यग्र व्याकुल स्वरमें) मुझे बिना जताये ही न जायेंगी। ऐसा हो ही नहीं सकता, एककौड़ी।

एककौड़ी—हुजूर, वे डाक्टर साहबके आनेके बाद ही चली गई हैं। बाहर सरदार बैठा है, उसने देखा है, भैरवीजी सीधी घरको चली गई।

जीवानन्द—(कुछ देर तक आँखोंकी सीधमें देखकर) तो बत्ती बुझाकर तुम भी चले जाओ एकाकौड़ी, मैं जरा सोऊँगा।

[एककौड़ी बत्ती बुझा देता है। जीवानन्द वेदना-म्लान मुखसे करवट लेकर सो रहता है। बत्ती बुझते ही पौ-फटनेकी धुँधली आभा खिड़कीमेंसे भीतर आ फैलती है।]

तृतीय दृश्य

चण्डी-मन्दिरका रास्ता। दोपहरसे कुछ पहले।

[एक भिखारी और उसकी लड़कीका प्रवेश]

लड़की—अब तो चला नहीं जाता चाचा, माताका मन्दिर और कितनी दूर है?

भिखारी—वह रहा, देख न, आगे आगे कितने लोग चले जा रहे हैं बिटिया, शायद अब ज्यादा दूर नहीं है।

लड़की—कोई गीत गाता हुआ आ रहा है चाचा, उससे पूछो न!

[गीत गाते हुए दूसरे भिखारीका प्रवेश]

भगवन्त भजन क्यों भूला रे! भगवन्त भजन क्यों भूला रे!
यह संसार रैनका सपना, तन-धन बारि-बबूला रे,
भगवन्त भजन क्यों भूला रे!

पहला भिखारी—माताका मन्दिर और कितनी दूर है बाबा?

दूसरा भिखारी—वह रहा—

इस जोवनका कौन भरोसा, पावकमें तृन-पूला रे,
काल, कुदाल लिये सिर ठाढ़ौ, कहा समझ मन फूला रे!
स्वारथ साधे पाँच पाँव तू परमारथको लूला रे,
कहु कैसे सुख पैहै प्रानी, काम करै दुख-मूला रे।
भगवन्त भजन क्यों भूला रे!

पहला भिखारी—क्यों जी!

दूसरा भिखारी—क्या है जी क्या!

पहला भिखारी—विष्णुगाँवसे आ रहा हूँ भाई, रास्ता जैसे खतम ही नहीं होना चाहता। सुना है, जनार्दन रायके नातीकी कल्याण-कामनासे आज माकी पूजा

होगी। ब्राह्मण-संन्यासी-भिखारी जो जो कुछ चाहेंगे, राय साहब उनको वही—

दूसरा भिखारी—राय साहब नहीं, रायसाहब नहीं, उनके दामाद। पश्चिम-देशके बारिस्टर हैं, राजा ही समझो। दो सरवा-भरके चूड़ा-दही-मीठा, एक सरवा सन्देस, बरफी, और आठ आने पैसे नगद—

भिखारीकी लड़की—(अपने बापसे) क्यों चाचा, तुमने तो कहा था कि लड़कियोंके लिए एक एक लाल किनारीकी धोती देंगे ?

दूसरा भिखारी—देंगे, देंगे। जो जो कुछ माँगेगा, उसे वही मिलेगा। राय साहबकी लड़की हैमवती किसीसे ' ना ' करना तो जानती ही नहीं।

मोह-पिसाच छल्यौ, मति मारै निज कर कंध बसूला रे,
भज भगवंत-नाम तू ' भूधर, ' दे दुरमति-सिर धूला रे,
भगवंत भजन क्यों भूला रे! भगवंत भजन क्यों भूला रे!

भिखारीकी लड़की—चाचा, माँगनेसे तुम्हें भी मिल जायगी एक धोती न ?

दूसरा भिखारी—मिलेगी, मिलेगी, जरा पाँव बढ़ाकर चले जाओ।

भगवंत भजन क्यों भूला रे, भगवंत भजन क्यों भूला रे!
यह संसार रैनका सपना, तन-धन वारि-बबूला रे!
भगवंत भजन क्यों भूला रे! +

[सबका प्रस्थान।]

+ मूल गीतका छायानुवाद यहाँ दिया जाता है:—

पानेका जब समय मिला था ओरे मूरख मन,
मरन-खेलके नशे बीच तू रहा विगत-चेतन।
तब थे मानिक, हीरे-मोती, राह-किनारे पड़े हुए,
अब डूबे दिन बीते वे सब, अन्धकारमें भरे हुए।
अब झूठी है ढूँढ़ा-ढूँढ़ी, झूठे आँसू-कन,
कहाँ मिलेगा अब वह तोकों—
अतल तलेमें डूब गया जो, शेष साधना-धन,
पानेका जब समय मिला था ओरे मूरख मन,
मरन-खेलके नशे बीच तू रहा विगत चेतन।

[बात करते करते षोड़शी और फकीर साहबका प्रवेश ।]

फकीर—जो बातें मेरे सुननेमें आई हैं बेटी, उन्हें सुनकर मुझसे चुपचाप न रहा गया, चला आया। मगर, मेरी तो कुछ समझमें ही नहीं आता षोड़शी, उस दिन किस लिए तुमने उस आदमीको इस तरह बचा दिया ?

षोड़शी—उस बीमार आदमीको क्या जेल भिजवाना ही उचित होता फकीर साहब ?

फकीर—इस बातका विचार करनेका भार तो तुमपर नहीं था बेटी, यह काम राजाका था,—इसीसे उसकी जेलोंमें भी अस्पताल है, बीमार अपराधियों-का वहाँ इलाज भी किया जाता है। पर सिर्फ यही अगर कारण हो बचानेका, तो अन्याय किया है तुमने, यह कहना ही पड़ेगा।

[षोड़शी चुपचाप फकीरके मुँहकी ओर देखती रह जाती है।

फकीर—जो होना था सो हो गया; पर आइन्दाके लिए यह गलती तुम्हें सुधार लेनी होगी षोड़शी।

षोड़शी—इसके मानी ?

फकीर—उस आदमीके अपराधों और अत्याचारोंकी कोई सीमा नहीं, सो तो तुम जानती ही हो। उसे दण्ड मिलना जरूरी है।

षोड़शी—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) मैं सब-कुछ जानती हूँ। शायद आप लोगोंका कर्तव्य उसे दण्ड देना हो, पर मेरी अपनी बात किसीसे कहनेकी नहीं। उसके विरुद्ध गवाही मैं कभी न दे सकूँगी।

फकीर—उस दिन नहीं दे सकीं, ठीक है, पर क्या भविष्यमें भी न दे सकोगी ?

षोड़शी—नहीं।

फकीर—आत्म-रक्षाके लिए भी नहीं ?

षोड़शी—नहीं, आत्म-रक्षाके लिए भी नहीं।

फकीर—आश्चर्य है ! (कुछ देर चुप रहकर) तुम अभी मन्दिर जा रही हो षोड़शी, तो मैं अब जाता हूँ।

[षोड़शी झुककर नमस्कार करती है। फकीर चले जाते हैं। अन्यमन-स्ककी तरह षोड़शी जा ही रही थी कि इतनेमें सागर बग्दी तेजीसे आकर उसके सामने खड़ा हो जाता है।]

सागर—क्यों मा, तुम्हारे पिता तारादास महाराजने, सुना है, सब कमरोंमें ताले लगाकर तुम्हें घरसे निकाल दिया है। उन सब लोगोंने मिलकर शायद यह तय किया है कि तुम्हें चण्डी-मन्दिरसे बिदा करके नई भैरवी लायेंगे ? ऐसा नहीं होनेका मा, सागर सरदारके जीते-जी ऐसा नहीं हो सकता, कहे देता हूँ।

षोड़शी—यह खबर तैंने कहाँ सुनी सागर ?

सागर—सुनी है मा, अभी अभी सुनकर ही तुम्हारे पास जानने दौड़ा आया हूँ। तुम औरत ठहरी मा, तुम्हें अगर अकेला पाकर जमींदारके आदमी घरसे पकड़ ले गये तो क्या वह तुम्हारा कसूर है ? कसूर है सारे गाँवका। कसूर है इस सागरका जो अपने रिश्तेदारोंके यहाँ जाकर आनन्दमें गर्क हो गया था,—अपनी माकी खबर ही नहीं रख सका। कसूर है इसके चाचा हरिहर सरदारका जो गाँवमें मौजूद रहते हुए भी इतने बड़े अपमानका बदला न ले सका।

षोड़शी—ऐसा अगर सचमुच हुआ होता सागर, तो तुम दो जनें चचा-भतीजे मौजूद रहकर ही क्या कर लेते, बताओ तो ? जमींदारके कितने आदमी हैं, जरा सोचो तो सही !

सागर—सो सोच लिया है मा ! उनके बहुत आदमी हैं, बहुत सिपाही-पियादे हैं। गरीब होनेके कारण हम लोगोंको सतानेमें भी वे कोई कोर-कसर नहीं रखते। दें हमें दुःख, आखिर हम लोग छोटे जो ठहरे। मगर तुम्हारा हुकम मिल जाय, तो मा भैरवीकी देहपर हाथ लगानेका बदला एक दफे जरूर चुका सकते हैं। गलेमें रस्सी बाँधके घसीट लाकर उन हुजूरको रात ही रातमें अपनी माके सामने बलि चढ़ा सकते हैं मा, कोई साला न रोक सकेगा।

षोड़शी—(सिहरकर) कहता क्या है रे सागर ! तुम लोग क्या इतने निर्दयी, इतने भयङ्कर हो सकते हो ? इतनी-सी बातके लिए एक आदमीको जानसे मारनेको जी चाहता है तुम लोगोंका ?

सागर—इतनी-सी बात ? तुम अपनी देहपर हाथ लगानेको इतनी-सी बात कहती हो मा ? तारादास महाराजको भी हम लोग माफ कर सकते हैं; जनार्दन रायको भी शायद कर दें, पर मौका पाकर जमींदारको हम लोग आसानीसे नहीं छोड़नेके। (क्षण-भर ठहरकर) मगर वे सब लोग कहा-सुनी कर रहे हैं मा, कि

तुम्हींने उनको उस रातको हाकिमके हाथसे बचा दिया है और कहते हैं कि तुम्हें कोई पकड़के नहीं ले गया। तुम खुद ही अपनी इच्छासे गई थीं?

पोड़शी—ऐसा भी तो हो सकता है सागर, मैंने सच बात कही थी।

सागर—इसीसे तो बड़ा भारी खटका लग गया है मा, तुम्हारे मुँहसे तो कभी झूठ बात निकलती नहीं। तो फिर यह क्या बात है! लेकिन खैर, वह चाहे कुछ हो, गाँव-भर चाहे जो कुछ कहता फिरे, हम कई घर छोटी जात-वाले तुम्हींको अपनी मा समझते हैं। अगर-चण्डीगढ़ छोड़के चली जाओगी मा, तो हम लोग भी तुम्हारे साथ लग लेंगे, मगर जानेसे पहले एक बार जता जायँगे कि कौन लोग गये! (जल्दीसे प्रस्थान)

पोड़शी – सागर, एक बात तुमसे कह नहीं सकी बेटा, तुम लोगोंकी जुम्मे-वारी शायद अब मैं नहीं उठा सकूँगी।

[एककौड़ीका प्रवेश]

पोड़शी—कौन, एकाकौड़ी?

एककौड़ी—(अदबके साथ) आपके पास आया हूँ। हुजूरने आपको एक बार याद किया है।

पोड़शी —कहाँ?

एककौड़ी—कचहरीमें बैठे रिआयाकी शिकायतें सुन रहे हैं। अगर आज्ञा दें तो पालकी लाने भेज दूँ।

पोड़शी—पालकी? यह उनका ही प्रस्ताव है या तुम्हारी बुद्धिमानी है एककौड़ी?

एककौड़ी—जी नहीं, मैं तो नौकर हूँ, यह स्वयं हुजूरकी आज्ञा है।

पोड़शी - (हँसकर) तुम्हारे हुजूरमें विवेचना-बुद्धि है यह मैं जानती हूँ, मगर फिलहाल पालकीपर सवार होनेकी फुरसत नहीं है। हुजूरसे जाकर कहो कि मुझे बहुत काम है।

एककौड़ी—उस वक्त, या कल सवेरे भी क्या समय न मिलेगा?

पोड़शी—नहीं।

एककौड़ी—मगर मिलता तो अच्छा होता। और भी बहुत-सी प्रजाओंकी शिकायतें हैं न, इसीसे।

पोड़शी—(कठोर स्वरमें) उनसे कह देना एककौड़ी, न्याय करनेकी बुद्धि

उनमें हो तो वे अपनी प्रजाका न्याय करें। मैं उनकी प्रजा नहीं हूँ, मेरा न्याय करनेके लिए राजाकी अदालत मौजूद है।

[षोड़शी तेजीसे चली जाती है और एककौड़ी कुछ देर तक स्तब्ध-भावसे खड़ा रहकर धीरे धीरे चल देता है। दूसरी ओरसे हैमवती और निर्मल प्रवेश करते हैं। हैमवतीके हाथमें पूजाका सामान है।]

हैमवती—जिस दयालु आदमीने तुम्हें उस दिन अँधेरी रातमें घर पहुँचा दिया था, सच सच बताओ, वह कौन था? उसे मैंने पहचान लिया है।

निर्मल—पहचान लिया? कौन हैं बताओ तो वे?

हैमवती—हमारे यहाँकी भैरवी। मगर, तुम्हें वे मिल कहाँसे गईं, सिर्फ इतना ही समझमें नहीं आता।

निर्मल—नहीं आता? मिली थीं बहुत दूर। तुम्हारे फकीर साहबके सम्बन्धमें बहुत-सी आश्चर्यजनक बातें सुनकर उन्हें देखनेके लिए कुतूहल हुआ था। ढूँढ़ता हुआ पहुँच गया उनके पास। नदी-किनारे आश्रम है। वहाँ जाकर देखा, तुम्हारी भैरवी बैठी हैं।

हैमवती—इसका कारण है, फकीरको वे गुरुकी तरह मानतीं और श्रद्धा-भक्ति करतीं हैं। मगर सचमुच ही क्या वे तुम्हें अँधेरेमें हाथ पकड़के घर पहुँचा गईं थीं।

निर्मल—सचमुच यही बात है। जैसे उन्होंने निश्चय समझ लिया कि ऐसे आँधी-मेहमें भयंकर अन्धकार-पूर्ण अनजान रास्तेमें मैं अन्धेके समान हूँ, वैसे ही स्त्री होते हुए भी, उन्होंने विना किसी संकोचके हाथ बढ़ाकर कहा, 'मेरा हाथ पकड़कर चले आइए।' पर दूसरेके लिए यह काम तुमसे न होता, हैम!

हैमवती—नहीं।

निर्मल—सो मैं जानता हूँ। (कुछ देर ठहरकर) देखो हैम, यह सच है कि तुम्हारी देवीकी इस भैरवीको पहचान नहीं सका, पर इतना निश्चित समझ गया हूँ कि इनके विषयमें न्याय-विचार करनेके लिए साधारण नियम लागू नहीं हो सकते। या तो सतीत्व वस्तु इनके लिए बिलकुल ही फालतू चीज है,—तुम लोगोंकी तरह उसके यथार्थ रूपको ये नहीं जानतीं, और या फिर, सुनाम दुर्नाम इन्हें स्पर्श तक नहीं कर सकता।

हैमवती—तुम क्या उस दिन जमींदारवाली घटनाका खयाल करके ये सब बातें कह रहे हो?

निर्मल—कोई आश्चर्य नहीं। शास्त्रमें कहा है, सात कदम एक साथ चलनेसे मित्रताका सम्बन्ध हो जाता है। मैंने तो इतना लम्बा रास्ता, दुर्भेद्य अन्धकारमें, एक मात्र उन्हींके भरोसेपर धीरे धीरे एक साथ तय किया था, एक एक करके बहुत-से प्रश्न भी उनसे पूछे थे; परन्तु, पहले भी वे जिस रहस्यमें छिपी हुई थीं, बादमें भी ठीक उसी तरह रहस्यमें छिपी रहीं,—उनकी कोई थाह ही नहीं मिली।

हैमवती—तुम्हारी जिरह भी नहीं मानी, और मित्रता भी मंजूर नहीं की ?

निर्मल—नहीं जी, नहीं, कुछ भी नहीं।

हैमवती—(हँसकर) जरा भी नहीं ? तुम्हारी तरफसे भी नहीं !

निर्मल—इतनी बड़ी बात क्या सिर्फ झाँसा देकर ही निकलवा लेना चाहती हो ? पर अपनेको पहचाननेमें भी तो देरी लगती है हैम !

हैमवती—देर लगने दो, फिर भी पुरुष पहचान जाते हैं। पर औरतोंपर तो ऐसा अभिशाप है कि मरते दम तक उनकी जिन्दगी अपनी तकदीर समझनेमें ही बीत जाती है।

निर्मल—(हैमवतीका हाथ पकड़कर) तुम क्या पागल हो गई हो हैम ! चलो, हम लोग जरा जल्दी चलें,—शायद पूजामें देर हो जायगी।

[दोनोंका प्रस्थान]

चतुर्थ दृश्य

नाच—मन्दिर

[चण्डीगढ़का मन्दिर और उससे लगा हुआ प्रशस्त बरामदा। सामने लम्बी-चौड़ी चहारदीवारीसे वेष्टित प्राङ्गण। प्रांगणमें नाच-मन्दिरका कुछ अंश दिखाई पड़ता है। मन्दिरका द्वार खुला हुआ है। दक्षिणकी तरफ प्रांगणमें प्रवेश करनेका रास्ता है। प्रातःकालका समय है, कोमल धूपका प्रकाश चारों ओर फैला हुआ है। मन्दिरके बरामदे और प्रांगणमें उपस्थित हैं जनार्दन राय, शिरोमणि महाराज, निर्मल वसु, षोड़शी, हैमवती तथा और भी कुछ स्त्री पुरुष।]

शिरोमणि—(षोड़शीसे) आज हैमवती अपने पुत्रके कल्याणके लिए जो पूजा करा रही है, उसमें तुम्हारा कोई अधिकार नहीं रहेगा,—उन्होंने अपनी

यह मन्शा हम लोगोंपर जाहिर की है। उन्हें आशंका है कि तुम्हारे द्वारा उनका कार्य सुसिद्ध न होगा।

षोड़शी—(पाण्डुर मुखसे)—अच्छी बात है, उनका काम जैसे सुसिद्ध हो, वे वैसा ही करें।

शिरोमणि—सिर्फ इतनी ही बात तो नहीं है; गाँवके हम सभी मुखिया आज इस सिद्धान्तपर स्थिर हुए हैं कि देवीका कार्य अब तुम्हारे द्वारा न होगा। माताकी भैरवी अब तुम्हें रखनेसे काम न चलेगा। कौन है, एक बार तारादास महाराजको बुलाना।

[एक आदमी बुलाने जाता है।]

षोड़शी—क्यों नहीं चलेगा?

एक व्यक्ति—आगामी चैत्र-संक्रान्तिपर नई भैरवीका अभिषेक होगा, हम लोगोंने तय कर लिया है।

[तारादास एक दस सालकी लड़कीको साथ लिये भीतर आते हैं।]

हैमवती—(तारादासकी ओर देखकर) जो कुछ सुन रही हूँ पिताजी, उससे क्या उनकी बातको ही सत्य मान लेना होगा?

तारादास—क्यों नहीं मान लेना होगा?

हैमवती—(छोटी लड़कीकी तरफ इशारा करके) इसे जब वे तजवीज करके ले आये हैं, तब झूठ बोलना क्या उनके लिए इतना ही असम्भव है? इसके सिवा झूठ-सचकी तो परीक्षा कर लेनी चाहिए पिताजी। इसमें इक-तरफा तो फैसला नहीं किया जा सकता।

[सब कोई विस्मित होते हैं।]

शिरोमणि—(हलकी हँसीके साथ) बेटी बारिस्टरकी गृहिणी ठहरी न, इसीसे जिरह शुरू कर दी है। अच्छा, मैं रोके देता हूँ। (हैमवतीसे) यह देवीका मन्दिर है,—पीठस्थान है,—इस बातको तो मानती हो?

हैमावती—(गरदन हिलाकर) मानती क्यों नहीं!

शिरोमणि—अगर यही बात है, तो तारादास ब्राह्मण-सन्तान होकर क्या देवमन्दिरमें खड़े झूठ बोल सकते हैं; पगली? (कहकहा मारकर हँस पड़ते हैं।)

हैमवती—स्वयं आप भी तो वही हैं शिरोमणिजी! फिर भी इस देव-

मन्दिरमें खड़े खड़े ही तो आप झूठी बातोंकी वर्षा कर गये। मैंने एक बार भी नहीं कहा कि उनसे काम करानेसे मेरा काम सिद्ध न होगा!

[शिरोमणि हतबुद्धिसे रह जाते हैं।]

जनार्दन—(क्रुद्ध होकर तीखे गलेसे) कहा कैसे नहीं?

हैमवती—नहीं पिताजी, नहीं कहा। कहना तो दूर रहा, यह बात मेरे मनमें भी नहीं आई। बल्कि, मैं तो उनसे ही पूजा कराऊँगी, इसमें चाहे मेरे लड़केका कल्याण हो या अकल्याण। (षोड़शीके प्रति) चलिए मन्दिरमें आप, हमारा समय निकला जा रहा है।

जनार्दन—(धैर्य खोकर अकस्मात् खड़े होकर भीषण कण्ठसे) हरगिज नहीं। अपने जीते जी मैं उसे हरगिज मन्दिरमें न घुसने दूँगा। तारादास, कहो तो सबके सामने उसकी माकी बात! सब सुन लें एक बार।

शिरोमणि—(साथ साथ खड़े होकर) नहीं, तारादासको रहने दो। उनकी बातपर आपकी लड़की शायद विश्वास न करेगी, रायसाहब। वह खुद ही कहे। चण्डीकी तरफ मुँह करके वही अपनी माका हाल कह जाय।—क्यों चटर्जी? —तुम्हारी क्या राय है भट्टाचार्य? क्यों? वह खुद ही कहे।

[षोड़शीका चेहरा फक पड़ जाता है।]

हैमवती—आप लोग इनका न्याय-विचार करना चाहते हैं तो खुद ही कीजिए; परन्तु, इनकी माकी बात इन्हींके मुँहसे कबूल करा लें, इतने बड़े अन्यायको मैं हरगिज न होने दूँगी। (षोड़शीके प्रति) चलिए, आप मेरे साथ मन्दिरके भीतर—

षोड़शी – नहीं बहन, मैं पूजा नहीं करती; जो इस कामको नित्य करते हैं वे ही करें। मैं सिर्फ यहीं खड़ी खड़ी तुम्हारे लड़केको आशीर्वाद देती हूँ,—वह चिरजीवी हो, मनुष्य बने। (पुजारीके प्रति) मगर, छोटे महाराज, तुम इधर उधर क्यों कर रहे हो? मेरा आदेश रहा, देवीकी पूजा यथारीति करके तुम अपना जो कुछ प्राप्य हो सो ले लेना। बाकी मन्दिरके भण्डारमें बन्द करके चाबी मुझे भेज देना। (हैमवतीके प्रति) मैं फिर आशीर्वाद किये जाती हूँ, तुम्हारे लड़केका सर्वाङ्गीण कल्याण हो।

[षोड़शी प्राङ्गणसे बाहर चली जाती है और पुरोहित पूजा करनेके लिए मन्दिरके भीतर प्रवेश करता है।]

जनार्दन—(निर्मल और हैमवतीके प्रति) जाओ बेटी, तुम लोग भी पुजारी महाराजके साथ जाओ और ऐसा करो जिससे पूजा सुसम्पन्न हो जाय।

(निर्मल और हैमवती मन्दिरके भीतर प्रवेश करते हैं।)

जनार्दन—खैर, जान बची, शिरोमणिजी महाराज, षोड़शी आप ही चली गई। छोकरीने जिदमें आकर मेरे दोहतेकी मानस-पूजा बिगाड़ नहीं दी, यही बहुत समझो।

शिरोमणि—यह तो होना ही था भाई साहब, माता महामायाकी मायाको क्या कोई रोक सकता है? उन्हींकी इच्छा जो ठहरी!

(यह कहकर और हाथ जोड़कर मन्दिरके लिए नमस्कार करते हैं।)

योगेन्द्र भट्टाचार्य—(गरदन उचकाकर देखता हुआ) एँ, अरे ये तो स्वयं हुजूर आ रहे हैं!

[सबके सब त्रस्त और चकित हो उठते हैं। जीवानन्द और उनके पीछे पीछे कई एक पियादों और नौकर-चाकरोंका प्रवेश।]

शिरोमणि और जनार्दन राय—आइए आइए, आइए। (कोई कोई नमस्कार करते हैं और बहुतसे प्रणाम।)

जनार्दन—मेरा परम सौभाग्य है कि आप पधारे हैं। आज मेरे दोहतेके कल्याणार्थ माताकी पूजा हो रही है।

जीवानन्द—अच्छा! इसीसे शायद बाहर इतने लोग इकट्ठे हो रहे हैं।

(जनार्दन विनयके साथ सिर झुका देते हैं।

शिरोमणि—हुजूरकी तबीयत ठीक है न?

जीवानन्द—तबीयत? (हँसकर) हाँ, अच्छी ही है। इसीसे तो आज सहसा बाहर निकल पड़ा। देखा कि बहुत-से लोगोंके झुण्डके झुण्ड आज इधरको आ रहे हैं। मैं भी साथ हो लिया। भाग्य प्रसन्न था, देवता, ब्राह्मण और साधु-संग तीनों ही भाग्यसे प्राप्त हो गये। राय साहबको तो मैं जानता पहचानता हूँ, पर आपको ठीक तौरसे पहचान नहीं सका, महाराज।

जनार्दन—ये हैं सर्वेश्वर शिरोमणि। बड़े बूढ़े प्राचीन निष्ठावान् ब्राह्मण हैं, गाँवके मुखिया ही समझिए।

जीवानन्द—अच्छा? ठीक है, ठीक है, बड़ा आनन्द हुआ। अच्छा तो यहींपर जरा बैठ न लिया जाय?

[बैठनेको उद्यत देखकर सब कोई व्यस्त हो उठते हैं।]

शिरोमणि—(जोरसे चिल्लाकर) आसन, आसन, बैठनेके लिए आसन ले आओ कोई !

जीवानन्द—आप उतावले न होइए शिरोमणिजी, मैं अत्यन्त विनयी आदमी हूँ। मौका पड़ जाने पर रास्तेपर लेटनेमें भी संकोच नहीं करता, फिर यह तो मन्दिर है। ऐसे ही ठीक रहेगा।

(जीवानन्द बैठ जाते हैं।)

जनार्दन—एक गुरुतर कार्यके लिए आपके पास हम लोगोंने आनेका निश्चय किया था, सिर्फ आपकी तबीयत खराब होनेकी वजहसे ही नहीं जा सके।

जीवानन्द—गुरुतर कार्यके लिए ?

शिरोमणि – जी हाँ हुजूर, गुरुतर तो है ही। षोड़शी भैरवीको हम लोग बिलकुल नहीं चाहते।

जीवानन्द—चाहते नहीं ?

शिरोमणि—नहीं हुजूर।

जीवानन्द—कुछ कुछ भनक मेरे कानों तक भी पहुँची है। भैरवीके विरुद्ध आप लोगोंकी शिकायत क्या है ?

(सब चुप रह जाते हैं।)

जीवानन्द—कहनेमें क्या आप लोगोंको करुणा आ रही है ?

जनार्दन – हुजूर सर्वज्ञ हैं, हम लोगोंकी शिकायत—

जीवानन्द—क्या शिकायत है ?

जनार्दन – हम गाँवके सोलहों आने बड़े-छोटे सब एकत्र होकर—

जीवानन्द—(जरा हँसकर) सो तो देख ही रहा हूँ। (उँगलीसे इशारा करके) ये ही हैं न वे भैरवीके बाप तारादास महाराज !

[तारादास कुछ बोले बिना नीचेको निगाह कर लेते हैं।]

शिरोमणि—(विनयके साथ) राजाके लिए प्रजा सन्तानके समान है। सर दोष करनेपर भी सन्तान है, न करनेपर भी सन्तान है। और बात एक तरहसे इन्हींकी है। इनकी कन्या षोड़शीको, हम लोगोंने निश्चय कर लिया है कि, अब महादेवीकी भैरवी नहीं रखा जा सकता। मेरा निवेदन है कि हुजूर उसे देव-सेवाके कार्यसे अलग होनेका आदेश दे दें।

जीवानन्द—(चकित होकर) क्यों ? उसका अपराध ?

दो तीन आदमी—(एक स्वरमें) बड़ा भारी अपराध है।

जीवानन्द—उन्होंने सहसा ऐसा क्या भयंकर दोष कर डाला रायसाहब, जिसके लिए उन्हें अलग करना जरूरी हो गया ?

[जनार्दन शिरोमणिको जवाब देनेके लिए आँखसे इशारा करता है।]

जीवानन्द—नहीं नहीं, इन्होंने बड़ा परिश्रम किया है, बूढ़े आदमीको अब और तकलीफ देनेकी जरूरत नहीं, बात क्या है, आप ही कह दीजिए।

जनार्दन—(आँखों और चेहरे पर दुविधा और संकोचका भाव लाकर) ब्राह्मणकी लड़की ठहरी, यह आदेश मुझे न दीजिए।

जीवानन्द—गो-ब्राह्मणपर आपकी अचला भक्तिकी बात इधर किसीसे छिपी नहीं है। मगर, इतने ऊँच-नीच आदमियोंको लेकर जब कि आप कमर बाँधकर इस कामके लिए तुल पड़े, तब बात जरूर बहुत गुरुतर है, इसका मुझे विश्वास हो गया है। पर उसे मैं आपहीके मुँहसे सुनना चाहता हूँ।

जनार्दन—(शिरोमणिके प्रति क्रुद्ध दृष्टि डालते हुए) हुजूर जब खुद ही सुनना चाहते हैं तो फिर डर किस बातका महाराज ? निर्भय होकर कह न दीजिए।

शिरोमणि—(व्यस्त होकर) सच बातमें डर काहेका जनार्दन ! तारादासकी लड़कीको अब हम लोग रक्खेंगे नहीं हुजूर, उसका चाल-चलन बहुत खराब हो गया है,—इतना आपको जताये देता हूँ।

[जीवानन्दका परिहाससे दीप्त प्रफुल्ल चेहरा अकस्मात् गम्भीर और कठोर हो उठता है।]

जीवानन्द—उनके चाल-चलनके खराब होनेकी खबर आप लोगोंको निश्चित रूपसे मालूम हो चुकी है ?

(सब गरदन हिलाकर मंजूर करते हैं।)

जीवानन्द—इसीसे सच्चा न्याय पानेकी आशासे छाँट-छूटकर एकबारगी भीष्मदेवके शरणापन्न हुए हैं रायसाहब ?

शिरोमणि—आप देशके राजा हैं,—न्याय कहिए अन्याय कहिए, आपहीको करना होगा। हमें उसीको सिर-माथे अंगीकार करना पड़ेगा। सारा का सारा चण्डीगढ़ तो आपहीका है।

जीवानन्द—(मुस्कराकर) देखिए शिरोमणिजी, अति विनयसे आप लोगोंको भी झुकनेकी कोई जरूरत नहीं, और अति-गौरवसे मुझे आसमानपर चढ़ानेकी आवश्यकता नहीं। मैं सिर्फ जानना चाहता हूँ कि यह दोषारोप क्या सच है?

(अधिकांश लोग उत्तेजनासे चंचल हो उठते हैं।)

शिरोमणि—दोषारोप? सच है या नहीं?—अच्छा, लोग तो खैर गैर हैं,—मगर तारादास, तुम्हीं बताओ। राजद्वार है, यथाधर्म कहना—

(तारादास एक बार पीला फक और एक बार सुर्ख हो उठता है। जनार्दनकी क्रुद्ध एकाग्र दृष्टि छिद छिद कर मानो उसे बार बार डसका देती है। वह एक खाली घूँट भरकर और एक बार गलेकी जड़ता साफ करके अन्तमें जान हथेली-पर रखकर कहने लगता है—)

तारादास—हुजूर—

जीवानन्द—(हाथ उठाकर उसे रोकते हुए) इनके मुँहसे इनकी ही लड़कीके कलंककी बात मैं 'यथाधर्म' कहनेपर भी नहीं सुनूँगा। बल्कि, आपमेंसे यदि कोई कह सके, तो 'यथाधर्म' कहे।

(नौकर पीछे ओटमें मौजूद है। वह टम्बलर भरकर व्हिस्की-सोडा मालिकके हाथमें थमा देता है। वे एक साँसमें गिलास खतम करके बेहराके हाथमें दे देते हैं।)

जीवानन्द—ओः, जान बची। आप लोगोंकी वाक्य-सुधा पीते पीते मारे प्यासके छाती तक सूखकर काठ हो गई थी।—पर, सब चुपचाप क्यों? क्या हुआ आप लोगोंके 'यथाधर्म' का?

[शिरोमणि नाकपर कपड़ा रख लेता है।]

जीवानन्द—(हँसकर) शिरोमणिने 'प्राणे अर्द्धभोजनं' के अनुसार नाक बन्द कर लिया क्या?

[बहुतसे लोग हँसकर मुँह फेर लेते हैं।]

शिरोमणि—(हतबुद्धि होकर) कहता हूँ, हुजूर। मैं सब यथाधर्म ही कहूँगा।

जीवानन्द—(गरदन हिलाकर) सम्भव तो यही है। आप शास्त्रज्ञ प्रवीण ब्राह्मण ठहरे, मगर, एक स्त्रीके नष्ट चरित्रकी कहानी उसकी अनुपस्थितिमें कहनेमें आपका 'यथा' रहे तो रहे, 'धर्म' भी रहेगा क्या! मुझे खुद इसमें कोई विशेष आपत्ति नहीं,—धर्माधर्मकी कथा मुझसे बहुत दिन पहले ही छूट गी

गई है। फिर भी, मैं कहता हूँ कि उसकी जरूरत नहीं। बल्कि मैं जो पूछता हूँ उसका जवाब दीजिए। मौजूदा भैरवीको आप लोग अलग करना चाहते हैं,—यही न ?

सबके सब—(सिर हिलाकर) हाँ, हाँ।

जीवानन्द—इनसे अब काम नहीं चल सकता ?

जनार्दन—(प्रतिवादीके ढँगपर सिर उठाकर) इसमें काम चलने न चलनेकी क्या बात है हुजूर, गाँवकी भलाईके लिए यह जरूरी है।

जीवानन्द—(हँसकर) अर्थात् गाँवकी भलाई-बुराईकी चर्चा बिना छेड़े भी यह मान लिया जा सकता है कि आपकी भलाई-बुराई कुछ न कुछ है ही। अलग करनेका मुझे अधिकार है या नहीं, सो तो मैं नहीं जानता; पर मुझे कोई ख़ास आपत्ति नहीं है। मगर, क्या और कोई बहाना नहीं बनाया जा सकता ? देखिए न कोशिश करके। बल्कि, हमारे एककौड़ीको भी साथ ले लीजिए। इस विषयमें उसको काफी हाथ-जस है, अनुभव है।

[सबके सब अवाक् रह जाते हैं।]

जीवानन्द—इन लोगोंके सतीत्वकी कहानी तो अत्यन्त प्राचीन और प्रसिद्ध है। लिहाजा, उसे अब छेड़नेकी जरूरत नहीं। भैरवी रहनेसे ही भैरव आ जुटता है, और भैरवोंकी भी भैरवीके बिना गुजर नहीं होती, यह तो सनातन प्रथा है,—सहजमें नहीं टाली जा सकती। देश-भरके भक्त लोग नाराज हो जायँगे, और हो सकता है कि देवी खुद भी खुश न हों,—एक उपद्रव खड़ा हो जाय। मातंगी भैरवीके पाँचेक भैरव थे और उनके पहले जो थीं उनके भैरवोंकी, सुनते हैं, उँगलियोंपर गिनती ही नहीं हो सकती। क्या कहते हैं शिरोमणिजी महाराज, आप तो इस प्रदेशके प्राचीन व्यक्ति हैं, जानते हैं सब ?

शिरोमणि—(सूखे मुँहसे बहुत ही धीरेसे) क्या मालूम, इसने सब सुन लिया है क्या !

[प्रफुल्ल प्रवेश करता है। उसके हाथमें अँग्रेजी-बंगलाके अखबार और कुछ खुली हुई चिट्ठियाँ हैं।]

जीवानन्द—क्या है जी प्रफुल्ल, यहाँ भी डाकखाना है क्या ? आह,—कब ये सब उठ जायँगे !

प्रफुल्ल—(गरदन हिलाकर) बात तो ठीक है। उठ जानेसे आपको सहूलियत होती। मगर अभी, जब कि उठे नहीं हैं, इन्हें देखनेको जरा समय मिलेगा? बहुत जरूरी है।

जीवानन्द—सो मैं समझ गया, नहीं तो यहाँ लाते ही क्यों? मगर देखनेकी फुरसत मुझे अब भी नहीं है, और आगे भी न होगी। लेकिन क्या है सो बाहरसे ही समझ रहा हूँ। वह हीरालाल मोहनलालकी दूकानकी छाप है। पत्र उनके वकीलका है या सीधा अदालतसे आ रहा है? यह लिफाफा तो सालोमन साहबका मालूम होता है। बापरे, विलायती सुधाकी गन्ध तो जैसे कागज फाड़कर निकली पड़ती है। क्या फरमाते हैं साहब? डिक्री जारी करेंगे या इस राज-शरीरको लेकर खींचातानी करेंगे,—क्या लिख रहे हैं? ओह! पुराने जमानेका ब्राह्मण-तेज अगर कुछ भी बचा होता तो इस यहूदीके बेटेको एकदम भस्म कर देता। तब शराबका कर्ज तो नहीं चुकाना पड़ता।

प्रफुल्ल—(व्याकुल होकर) क्या कह रहे हैं भाई-साहब! रहने दीजिए, रहने दीजिए, फिर किसी वक्त देखिएगा।

(लौट जानेको उद्यत होता है।)

जीवानन्द—(हँसकर) अरे शरमकी क्या बात है भाई, ये सब अपने ही आदमी हैं, ज्ञात-गोष्ठी हैं,—यहाँतक कि इन्हें मणि-माणिक्यके दो पहल कहा जाय तो भी अत्युक्ति न होगी। इसके सिवा तुम्हारे भाई साहब तो कस्तूरी-मृग ठहरे। सुगन्धको और कहाँ तक दबाये रक्खा जा सकता है, भाई? प्रफुल्ल, नाराज मत होओ भाई, अपना कहने लायक तो किसीको बाकी नहीं छोड़ा। पर इन चालीस सालोंकी आदतको छोड़ सकूँगा, ऐसा तो नहीं मालूम होता,—इतने तो बल्कि जाली नोट-ओट बना सकें, ऐसे किसीको अगर ढूँढ़-ढाँढ़ लाते—

प्रफुल्ल—(अत्यन्त नाराज होकर भी हँस देता है) देखिए, सब कोई आपकी बातको समझेंगे नहीं। सच समझकर अगर कोई—

जीवानन्द—(गम्भीर होकर) ढूँढ़कर ले आया? तब तो जान बच जाय, प्रफुल्ल। राय साहब, सुना है कि आप बड़े अनुभवी आदमी हैं, आपकी जान-पहचानका क्या ऐसा कोई—

जनार्दन—(म्लान-मुखसे उठकर) अबेर हो गई है, अगर आज्ञा हो तो—

जीवानन्द—बैठिए, बैठिए, नहीं तो प्रफुल्लकी नसीहत रह जायगी। इसके

अलावा भैरवीकी बात भी खतम हो जाने दीजिए।—पर मेरे 'जाओ' कहनेसे ही क्या वह चली जायगी ?

जनार्दन—इसका भार हम लोगोंपर रहा।

जीवानन्द—लेकिन और किसीको नियुक्त भी तो करना चाहिए। स्थान तो खाली नहीं रह सकता।

बहुतसे—यह भार भी हमीं लोगोंपर रहा।

जीवानन्द—खैर जान बची, तब वह जरूर चली जायगी। इतने आदमियोंके निःश्वासका भार अकेली भैरवी ही क्यों, स्वयं माता चण्डी भी नहीं सम्हाल सकतीं। अपने हानि-लाभकी बात आप ही लोग समझें, परन्तु हमारी जैसी अवस्था है, उसे देखते हुए रुपये मिलनेसे हमें किसी भी बातमें उज्र नहीं है। नये बन्दोबस्तमें हमें कुछ मिलना चाहिए। हाँ, अच्छी याद आई, देखो तो रे कोई, एककौड़ी है या चला गया ? पर गला जो इधर सूखकर मरुभूमि हो गया !

बेहरा—(प्रवेश करके मालिकके व्यग्र-व्याकुल हाथमें भरा हुआ गिलास थमाते हुए) वे भोजनशालाकी कोठरियाँ देख रहे हैं।

जीवानन्द—अभीसे ? बुला उसे। (शराब पीता है।)

[इसके बाद पूजार्थी लोग मन्दिरमें प्रवेश करने लगते हैं और अपनी अपनी पूजा समाप्त करके बाहर निकलते जाते हैं। इनकी संख्या क्रमशः बढ़ती जाती है।]

[एककौड़ीका प्रवेश]

जीवानन्द—आज मैंने भैरवीको तलब किया था। किसीने उन्हें खबर दी थी ?

एककौड़ी—मैं खुद गया था।

जीवानन्द—वे आई थीं ?

एककौड़ी—जी नहीं।

जीवानन्द—नहीं क्यों ? (एककौड़ी सिर झुकाये चुप रहता है) कब आवेंगी, कुछ कहा है ?

एककौड़ी—(उसी तरह सिर झुकाये हुए) इतने आदमियोंके बीचमें उस बातको हुजूरके सामने पेश नहीं कर सकता।

जीवानन्द—एककौड़ी, तुम अपना गुमाश्तागीरीका कायदा अभी रहने दो। बताओ, वे आयेंगी या नहीं ?

एककौड़ी—नहीं।

जीवानन्द—क्यों ?

एककौड़ी—वे आ नहीं सकेंगी। उन्होंने कहा है, अपने हुजूरसे कह देना, उनमें न्याय-विचार करने लायक विद्या-बुद्धि हो तो वे अपनी प्रजाका करें, मेरे न्याय-विचारके लिए अदालत खुली पड़ी है।

जीवानन्द—(गम्भीर चेहरेसे) हूँ ! अच्छा, तुम जाओ।

[एककौड़ीका प्रस्थान]

जी०—प्रफुल्ल, वह जो चीनीकी कम्पनीके साथ हजार बीघा जमीन बेचनेकी बात हुई थी, उसकी दस्तावेज लिखी जा चुकी ?

प्रफुल्ल—जी हाँ, लिखी जा चुकी।

जीवानन्द—अभी जाकर उसे पक्की कर लो। लिख दो, जमीन उन्हें मिलेगी।

प्रफुल्ल—ऐसा ही होगा।

[पूजार्थी और पूजार्थिनी-गण जाते-आते हैं।]

जीवानन्द—आज तो पूजाकी बड़ी भीड़ देख रहा हूँ। या, रोज ही ऐसी होती है ?

जनार्दन—आज जरा कुछ विशेष आयोजन तो है ही,—इसके सिवा इन 'चड़क' के दिनोंमें कुछ दिनों तक ऐसी ही रहती है। लोगोंकी भीड़ अभी बढ़ती ही रहेगी।

जीवानन्द—ऐसी बात है क्या ? अबेर हो चली तो अब उठना चाहिए। (हँसकर) एक मजेकी बात देखी रायसाहब, चण्डीगढ़के लोग लगभग भूल ही जाते हैं कि जमींदार अब कालीमोहन नहीं हैं, जीवानन्द चौधरी है। बहुत फर्क है न ?

[क्या जवाब दें, कुछ सोच न सकनेके कारण जनार्दन सिर्फ उनके मुँहकी ओर देखते रहते हैं।]

जीवानन्द—यहाँ ऐसा एक भी प्राणी न होगा जो चौधरियोंका विश्वासी न हो। ठीक है न शिरोमणिजी ?

शिरोमणि—इसमें सन्देह ही क्या है, हुजूर !

जीवानन्द—नहीं तो,—मुझे कोई सन्देह नहीं, पर और किसीको सन्देह न

हो। अच्छा नमस्कार शिरोमणिजी, चल दिया। (हँसकर) मगर भैरवीको विदा करनेका मामला खतम होना चाहिए। चलो प्रफुल्ल, चलना चाहिए अब।

[प्रस्थान।]

शिरोमणि—(जमींदार सचमुच चला गया या नहीं, उचककर यह देखनेके बाद—) जनार्दन, कैसा मालूम होता है, भाईसाहब?

जनार्दन—मालूम तो बहुत-कुछ होता है।

शिरोमणि—महापापिष्ठ है,—हया शरम जरा भी नहीं।

जनार्दन—(गम्भीर मुखसे) बिलकुल नहीं।

शिरोमणि—बड़ा दुर्मुख है, मुँहफट! दूसरोंकी मान-मर्यादाका जरा भी खयाल नहीं।

जनार्दन—कतई नहीं।

शिरोमणि—मगर देखा भाईसाहब, बात करनेका ढंग! सीधी है या टेढ़ी, सच है या झूठ, मज़ाक़ है या तिरस्कार,—कुछ सोचा-समझा ही नहीं जा सकता। आधी बातें तो समझमें ही नहीं आईं, जैसे पहेली हों। पाखंडी सच कह गया या हम लोगोंको बन्दर-नाच नचा गया,—ठीक समझमें नहीं आया। पर जानता सब है, क्या कहते हो?

[जनार्दन निरुत्तर हो रहता है।]

शिरोमणि—जैसा कि सोच रक्खा था, बेटा बुद्धू-सुद्धू नहीं है—कोई खास मतलब नहीं निकलनेका, यही आशंका होती है न?

जनार्दन—माताकी इच्छा।

शिरोमणि—इसमें तो कहना ही क्या है! मगर मामला कुछ खिचड़ी हो गया। न तो इसको पकड़ा जा सका और न उसीको मार सके। तुम्हारा क्या है भाई साहब! पैसेका जोर है, छोकरी यक्षकी तरह पहरा दे रही है,—चले जानेसे बगीचेके सामनेका बेंड़ा तुम्हारा मजेका चौकस हो जायगा। पर शेरकी माँदके आगे जाल फैलानेमें मैं न मारा जाऊँ।

जनार्दन—आप डर गये क्या भाई साहब?

शिरोमणि—नहीं नहीं, डरा नहीं, डरनेकी क्या बात है,—मगर तुम्हें भी भरोसा हो गया हो ऐसा तो तुम्हारा मुँह देखकर मालूम नहीं होता। हुजूर तो कान-कटे सिपाही ठहरे,—बातें भी पहली-सी हैं और काम भी वैसे ही अद्भुत

है ! उन्होंने हम लोगोंको गला दबाकर शराब नहीं पिला दी, यही आश्चर्य है !—एककौड़ीकी जबानी भैरवी महाराजिनकी घुड़की भी तो सुन ली ? तुम लोग तो चुप थे, मैंने ही ज्यादा बातें की थीं,—पर यह अच्छा नहीं किया। क्या मालूम, एककौड़ी बेटा भीतर ही भीतर सब बातें कहीं कह न दे। दोके बीचमें पड़कर आखिर जालमें न फँस जाऊँ !

जनार्दन—(उदास कण्ठसे) सब चण्डीकी इच्छा है। अबेर हो गई है, शामके बाद एक बार आइएगा ?

शिरोमणि—सो तो आऊँगा ही। पर, वह देखो, वे तो फिर इधर ही आ रहे हैं जी !

[मन्दिरके प्राङ्गणके एक दरवाजेसे षोड़शी और उसके पीछे सागर और उसके साथियोंका प्रवेश। दूसरे दरवाजेसे जीवानन्द, प्रफुल्ल, नौकर और कुछ पियादोंका प्रवेश।]

जीवानन्द—चला जा रहा था, सिर्फ तुम्हें आते देखकर लौट आया। एककौड़ीके मारफत तुम्हें बुलवाया था और उसीके मुँहसे तुम्हारा जवाब भी सुना। तुम्हारे विरुद्ध राजाकी अदालतमें जाकर खड़े होनेकी बुद्धि मुझमें नहीं है, पर अपनी प्रजाको शासनमें रखनेकी विद्या मैं जानता हूँ। तमाम गाँवकी प्रार्थनाके अनुसार तुम्हारे सम्बन्धमें मैंने क्या आदेश दिया है, सुना है ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—तुम्हें विदा कर दिया गया है। नई भैरवी नियुक्त करके उसे मन्दिरका भार दिया जायगा। अभिषेकका दिन भी निश्चित हो गया है। तुम रायसाहब वगैरहके हाथमें देवीकी समस्त स्थावर सम्पत्ति और मेरे गुमाश्तेके हाथमें सन्दूककी चाबी दे देना। इस विषयमें तुम्हें कुछ कहना है ?

षोड़शी—मेरे वक्तव्यसे आपको कोई मतलब है क्या ?

जीवानन्द—नहीं, कोई मतलब नहीं। पर आज शामके बाद मन्दिरमें एक सभा होगी। इच्छा हो तो पाँच पंचोंके सामने तुम अपना दुखड़ा सुना सकती हो। हाँ, खूब याद आया, सुना है कि मेरे विरुद्ध मेरी प्रजाको तुम विद्रोही बनानेकी कोशिश कर रही हो !

षोड़शी—सो तो नहीं जानती। पर अपनी प्रजाको आपके उपद्रवोंसे बचानेकी कोशिश जरूर कर रही हूँ।

जीवानन्द—(ओठ चबाते हुए) कर सकोगी ?

षोड़शी—कर सकना न सकना माता चण्डीके हाथमें है ।

जीवानन्द—मरेंगे वे !

षोड़शी—आदमी अमर नहीं है, इस बातको वे जानते हैं ।

[क्रोध और अपमानसे सबकी आँखें और चेहरे सुर्ख हो उठते हैं। एककौड़ी ऐसा भाव दिखाने लगता है मानो वह बड़ी मुश्किलसे अपनेको सम्हाले हुए है।]

जीवानन्द—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) तुम्हारी अपनी प्रजा अब कोई नहीं। वे जिनकी प्रजा हैं उन्होंने खुद दस्तखत कर दिये हैं। उन्हें कोई रोक नहीं सकता ।

षोड़शी—(मुँह उठाकर) आपका और कोई हुक्म है ? नहीं न ! तो दया करके अब मेरी बात सुन लीजिए ।

जीवानन्द—बोलो ।

षोड़शी—आज देवीकी स्थावर सम्पत्ति सौंप देनेकी फुरसत मुझे नहीं है। और शामको मन्दिरके भीतर कहीं भी सभा-समितिके लिए स्थान न होगा । फिलहाल यह सब बन्द रखना होगा ।

शिरोमणि—(सहसा चीत्कार करके) हरगिज नहीं ! हरगिज नहीं ! यह सब चालाकी हम लोगोंके सामने नहीं चल सकती, कहे देता हूँ—

[जीवानन्दके सिवा सभी कोई इसकी प्रतिध्वनि कर उठते हैं ।]

जनार्दन—(गरम होकर) तुम्हें फुरसत और मन्दिरके भीतर जगह क्यों नहीं होगी, जरा सुनूँ तो महाराजिन ?

षोड़शी—(विनीत कण्ठसे) आप तो जानते हैं रायसाहब, इस समय 'चड़क' का * उत्सव है। यात्रियोंकी भीड़ है, संन्यासियोंकी भीड़ है,—फिर मुझे फुरसत कहाँ ? और उन्हें भी कहाँ हटाया जाय ?

जनार्दन—(आपेसे बाहर होकर गरजते हुए) होनी ही चाहिए ! मैं कहता हूँ, फुरसत होनी चाहिए !

षोड़शी—(जीवानन्दसे) लड़ाई-झगड़ा करनेसे मुझे घृणा है। पर, इन

* चड़क-पूजा बंगालमें चैत्र-संक्रान्तिके दिन खूब धूम-धामसे होती है। इसमें बहुतसे गृहस्थ भी संन्यास ग्रहण करते हैं जो संन्यासी कहलाते हैं, और पूजा समाप्त होनेपर संन्यास छोड़ देते हैं ।

सब कामोंके लिए अभी मौका नहीं मिलेगा, यह बात आप अपने अनुचरोंको समझा दीजिएगा। मेरे पास समय कम है, आप लोगोंका काम निपट चुका हो, तो मैं अब जाती हूँ।

जीवानन्द—(गरम स्वरसे) लेकिन मैं हुक्म दिये जाता कि आज ही यह सब होगा और होना चाहिए।

षोड़शी—जबरदस्ती ?

जीवानन्द—हाँ जबरदस्ती।

षोड़शी—आसानी-परेशानी चाहे जो भी हो ?

जीवानन्द—हाँ, आसानी परेशानी चाहे जो भी हो।

षोड़शी—(पीछेकी तरफ भीड़मेंसे सागरको उँगलीके इशारेसे बुलाकर) तुम लोगोंका सब ठीक है ?

सागर—(विनयके साथ) ठीक है मा, तुम्हारे आशीर्वादसे कमी कुछ भी नहीं।

षोड़शी—अच्छी बात है। जमींदारके आदमी आज एक हंगामा खड़ा करना चाहते हैं, पर मैं ऐसा नहीं चाहती। इस चड़क-पूजाके मौकेपर खून-खराबी हो ऐसी मेरी इच्छा नहीं है, लेकिन, जरूरत पड़नेपर करनी ही होगी। इन आदमियोंको तुम लोग देख-भाल लो, इनमेंसे कोई भी मेरे मन्दिरकी हदमें न आ पावे। चटसे मार मत बैठना, सिर्फ निकाल देना। [प्रस्थान]

द्वितीय अंक

प्रथम दृश्य

पोड़शीकी कुटीर

[संध्या उत्तीर्ण हो चुकी है। घरके भीतर दिआ जल रहा है। पोड़शी बैठी है। इतनेमें निर्मल और हैमवती प्रवेश करते हैं। पीछे पीछे नौकर है।]

पोड़शी—आओ, आओ, पर क्या माजरा है! तुम लोगोंके आज दोपहरकी गाड़ीसे चले जानेकी बात थी न?

(निर्मल और हैमवती दोनों पास बैठ जाते हैं।)

हैमवती—बात तो थी, पर गये नहीं। इन्हें भी नहीं जाने दिया। जीजीके इस नये घरको आँखोंसे देखे बिना चले जानेसे पछताना पड़ता।

निर्मल—आँखोंसे देखे बिना चले जानेसे पछताना पड़ेगा, ऐसा तो नहीं मालूम होता।

हैमवती—सो तो ठीक है। शायद आँखोंसे न देखना ही अच्छा होता। इस घरमें और चाहे जो भी दोष हो, फिजूलखर्चीकी बदनामी, शिरोमणिजी ही क्यों, शायद मेरे पिताजी भी नहीं कर सकते। मगर यह पागलपन क्यों किया जीजी, इस घरमें तो तुमसे नहीं रहा जायगा!

पोड़शी—इससे भी कहीं बुरे घरोंमें लोगोंको रहना पड़ता है, बहन।

हैमवती—तो क्या सचमुच ही तुम सब छोड़ दोगी?

निर्मल—इसके सिवा और उपाय क्या है, बता सकती हो? सारे गाँवके साथ तो एक जनी असहाय स्त्री रात-दिन झगड़ा करके टिक नहीं सकती।

हैमवती—हम लोगोंने सब-कुछ सुना है। तुम संन्यासिनी हो, सब-कुछ सह सकती हो, पर, इसके साथ जो झूठी बदनामी लगी रह गई उसे भी क्या सह लोगी जीजी?

पोड़शी—बदनामी अगर झूठी ही हो तो क्यों नहीं सह सकूँगी? संसारमें झूठी बातोंकी कमी नहीं, पर, उस झूठी बातके साथ लड़कर झूठा काम करनेमें मुझे शरम लगती है, बहन!

हैमवती—जीजी, तुम संन्यासिनी हो, तुम्हारी सब बातें मैं नहीं समझ सकती। पर तुम्हें देखकर मुझे कैसा लगता है जानती हो ? मेरे ससुरको किसी राजाने एक तलवार खिलअतमें दी थी। म्यान उसकी धूल-मिट्टीसे मैली हो गई है पर असली चीजपर कहीं जरा भी मैल नहीं लगा है। वह जैसी सीधी है वैसी ही पाक-साफ और कठोर भी। उसकी बात, तुम्हें देखते ही, मुझे याद आ जाती है। मालूम होता है, गाँव-भरके सभी लोग गलतीपर हैं, असल बात कोई भी नहीं जानता।

षोड़शी—(हैमवतीका हाथ अपने हाथमें लेकर) आज तुम लोगोंका जाना क्यों नहीं हुआ हैम ? शायद कल जाओगी, न ?

हैमवती—अपने लड़केकी बात छेड़ते ही तुम नाराज हो जाती हो, इस-लिए उसे अब न कहूँगी; पर बड़े-भारी आँधी-मेहके समय अँधियारी रातमें मेरे इस अन्धे आदमीको जो हाथ पकड़कर नदी पार करके चुपके-से घर पहुँचा गई थीं, उनके पैरोंकी धूल लिये बगैर हम लोग जा कैसे सकते थे ? लेकिन, जानेके पहले इतना वचन मुझे दे दो कि अगर कभी आपको किसी आदमीकी जरूरत पड़े, तो, उस समय इस प्रवासीको न भूलना।

हैमवती—(षोड़शीको नीरव देखकर) शायद वचन देना नहीं चाहतीं, क्यों जीजी !

षोड़शी—वचन दिया, न भूलूँगी। भूली भी नहीं हैम। चोटपर चोट खा खा कर आज ही तुम्हें चिट्ठी लिख रही थी। सोचा था कि तुम्हारे चले जाने-पर उसे डाकसे भेज दूँगी। मगर उसे खतम नहीं कर पाई,--सहसा मालूम हुआ कि इसके लिए शायद तुम्हारे पिताजीसे ही अन्तिम लड़ाई छिड़ जायगी।

हैमवती—छिड़ भी सकती है। लेकिन और भी एक भारी बात है जीजी। मेरे इस अन्धे आदमीको जो तुमने बचाया है, उससे बढ़कर संसारमें मेरे लिए और तो कुछ है नहीं।

षोड़शी—सचमुच ही कुछ नहीं है हैम ?

हैमवती—नहीं, कुछ नहीं है। और इस सच्ची बातको कह जाऊँ, इसीलिए आज नहीं जा सकी।

षोड़शी—(हँसकर) मगर इस छोटी-सी बातके लिए तो तुम ही काफी थीं बहन, और तब निर्मल बाबूको आसानीसे जाने दे सकती थीं।

हैमवती—इन्हें ? अकेला ? हाय हाय, जीजी, बाहरसे तुम लोग सोचा करती हो, बड़े भारी बैरिस्टर हैं, जबरदस्त आदमी हैं। पर मैं ही जानती हूँ सिर्फ, कि इस बिना तनखाकी दासीके मिल जानेसे ही ये दुनियामें टिके हुए हैं। सच कहती हूँ, जीजी, मरदोंमें यह एक आश्चर्यकी बात है। बाहरकी तरफ जो जितने बड़े, जितने जबरदस्त, जितने शक्तिशाली होते हैं, भीतरकी तरफ वे उतने ही अशक्त, उतने ही कमजोर, उतने ही अपटु होते हैं। जरूरतके वक्त न जाने कहाँ इनके कागज खो जाते हैं, बाहर जाते समय कोट-कमीज-पोशाकका पता ही नहीं रहता, रास्तेमें निकलनेपर जेबके रुपयों-पैसोंका होश नहीं रहता,—आखिर किस भरोसेपर इन्हें अकेला छोड़ दूँ बताओ तो ? (हँसकर) जरा-सा आँखोंसे ओझल किया था, तो उस दिन ऐसा विभ्राट हो गया। भाग्यसे तुम मिल गईं।

नौकर—माजी, कलकी तरह आज भी आँधी-मेह हो सकता है। बादल हो रहे हैं !

हैमवती—तो अब उठूँ। बादलोंके कारण नहीं, जीजी,—तुम्हारे पाससे तो उठनेको जी ही नहीं करता। पर कल सबेरे ही रवाना होना है,—आज कामका अन्त ही नहीं। इनको लेकर भाग आई हूँ, छिपके घरमें घुसना होगा, पिताजी न देख लें। अब तक लल्ला स्यात् नींदसे उठ बैठा होगा, उसे दूध पिलाकर सुला देना होगा; इनको खिलाना-पिलाना और कोई जानता नहीं, ओटमें रहकर सब इन्तजाम करना पड़ेगा, उसके बाद रेलगाड़ीके लम्बे सफरकी सब तैयारी मुझे खुद अपने हाथोंसे करनी पड़ेगी। किसीपर भरोसा नहीं किया जा सकता। पति, बच्चे, नौकर-चाकर,—इनका कितना झंझट है, कितना भार है !—मुझे साँस लेनेका भी वक्त नहीं है, जीजी।

षोड़शी—इसमें तुम्हें तकलीफ होती है, बहन ?

हैमवती—(हँसते चेहरेसे) सो होती है। फिर भी यही आशीर्वाद दो मुझे, कि इस तकलीफको लिए हुए ही किसी दिन जा सकूँ। और दुबारा अगर फिर जन्म लेना पड़े तो ऐसी ही तकलीफ फिर विधाता मेरे करममें लिख दें, उस दिन भी इसी तरह मुझे साँस लेनेकी फुरसत न मिले।

षोड़शी—तुम्हारी बात मैं समझ गई, हैम। यह मानो तुम्हारा आनन्दका मधुचक्र है। भार जितना ही बढ़ता जाता है उतने ही इसके अन्ध्र-रन्ध्र मधुसे भरते जाते हैं। ऐसा ही हो, आज तुम्हें यही आशीर्वाद देती हूँ।

हैमवती—(सहसा पाँव छूकर और पद-धूलि सिरसे लगाकर) यही दो जीजी, हम स्त्रियोंके जीवनमें इससे बढ़कर आशीर्वाद और क्या है !

निर्मल—आह, न जाने तुम क्या बकती जा रही हो ! आज तुम्हें हो क्या गया है ?

हैमवती—क्या हुआ है, तुम क्या जानोगे !

षोडशी—जाननेकी शक्ति भी है क्या आप लोगोंमें ?

निर्मल—' आप लोगोंमें ' अर्थात् पुरुषोंमें ? नहीं, इतने बड़े कठिन तत्त्वको हृदयंगम करनेका सामर्थ्य नहीं है, इस बातको मैं मानता हूँ ।—मगर इस सत्यको आपने कैसे जान लिया ?

हैमवती—क्यों ? क्या देवीकी भैरवी होनेके कारण न जानतीं ? पर भैरवी क्या स्त्री नहीं हैं ? अजी महाशय, यह तत्त्व हम लोगोंको कोशिश करके नहीं सीखना पड़ता । हमारे जनमते ही विधाता अपने हाथोंसे, दोनों हाथ भरकर, हमारी छातीमें उँड़ेल देते हैं । उस सम्पदाके आगे हम इन्द्राणीके ऐश्वर्यकी भी कामना नहीं करतीं । क्या यह सच नहीं है जीजी ?

षोडशी—सच ही तो है बहन !

नौकर—माजी, बादल तो बढ़े ही आते हैं !

हैमवती—ले, अभी उठती हूँ । बहुत बातें बक गई जीजी, माफ करना ।

निर्मल—हैमको जो चिट्ठी लिख रही थीं उसे हाथमें दे देनेसे समय भी बचता और पैसे भी ।

षोडशी—(हँसकर) न देनेसे भी बच जायँगे । शायद अब उसकी जरूरत ही न होगी ।

निर्मल—भगवान करें, न हो । परन्तु होनेपर अपने इन दो प्रवासी भक्तोंको भूलिएगा नहीं !

हैमवती—तो अब जाती हूँ जीजी । (पद-धूलि लेकर उठ खड़ी होती है ।) तुम्हारे मुँहकी ओर देखकर आज न जाने क्या क्या ख्याल आ रहे हैं । जीजी, मालूम होता है, ऐसा मानो तुम्हें और कभी नहीं देखा, मानों सहसा न जाने कहाँ कितनी दूर चली गई हो ।

निर्मल—नमस्कार । जरूरतके वक्त पुकार होनी चाहिए ।

[सबका प्रस्थान]

षोड़शी—हैम, तुम आज मानो मेरी न जाने कितने दिनोंकी आँखोंकी पट्टी खोल गईं, बहन। कौन ?

[सागरका प्रवेश]

सागर—मैं हूँ सागर।

षोड़शी—तेरे और सब साथी कहाँ हैं जो कल दल बाँधकर आये थे ?

सागर—आज भी वे सब उसी तरह दल बाँधकर गये हैं हुजूरकी कचहरीमें। और शायद तुम्हारे ही खिलाफ़—

षोड़शी—कहता क्या है सागर ? मेरे ही खिलाफ ?

सागर—ताज्जुब करनेकी तो इसमें कोई बात नहीं है मा ! सब तरहकी आफत-विपतमें हमेशासे तुम्हारे ही पास आकर खड़े होनेकी आदत थी सबकी, शुरूमें उस आदतको शायद छोड़ न सके होंगे। मगर आज जमींदारकी एक ही घुड़कीसे उन्हें होश आ गया है।

षोड़शी—अच्छी बात है। मगर सभा तो, सुना था, मन्दिरहीमें होनेवाली है ?

सागर—होनेवाली तो थी, और हुजूरके मोनपुरियोंकी भी मनसा थी, पर गाँवके लोग राजी नहीं हुए। वे तो सब इधरके ही आदमी हैं, हम चचा-भतीजोंको शायद पहचानते हैं।

षोड़शी—क्या तय हुआ सभामें ?

सागर—सो सब अच्छा ही हुआ। इसी मंगलवारके दिन उस लड़कीका अभिषेक होगा। तुम्हें भी कोई चिन्ता नहीं, काशीवासके लिए प्रार्थना करनेपर एक-सौ रुपये पा सकती हो।

षोड़शी—प्रार्थना करनी पड़ेगी शायद हुजूरके दरबारमें ?

सागर—हाँ, ऐसा ही मालूम होता है।

षोड़शी—अच्छा, जमीन-जायदाद जिनकी सब चली गई उनके लिए क्या तय हुआ ?

सागर—डरनेकी कोई बात नहीं मा, हमेशासे जो चला आया है, उसके खिलाफ कुछ न होगा।

षोड़शी—और तुम लोगोंका क्या होगा ?

सागर—हम चचा-भतीजोंका ? (जरा हँसकर) उसका इन्तजाम भी

रायसाहबने कर दिया है, वे बिलकुल चुप मारे नहीं बैठे थे। पक्के तजरबेकार आदमी ठहरे। दारोगा, पुलिस वगैरह मुट्ठीमें हैं, दसेक कोसके भीतर एक डकैती होने भरकी देर है।

षोड़शी—(डरकर) क्यों रे, इसको क्या तुम लोग सत्य समझते हो?

सागर—समझते हैं! यह तो आँखोंके सामने साफ दिखाई दे रहा है मा। हम लोगोंको अब जेलखानेसे बाहर रख सके, ऐसी ताकत किसीमें भी नहीं। (जरा ठहरकर) मगर, जिन्हें जेलकी सजा न होगी उनका दुर्भाग्य कुछ कम नहीं है, मा।

षोड़शी—क्यों?

सागर—उनकी हालत हम लोगोंसे भी बुरी होगी। जेलके अन्दर खानेको मिलता है,—कुछ भी हो, हमें दो गस्से खानेको तो मिलेंगे; लेकिन, इन्हें वे भी नहीं मिलेंगे। रायसाहबसे उधार लेकर जमींदारकी सलामी जुटाई है,—उन हाथ-चिट्ठोंकी डिक्री होने-भरकी देर है, उसके बाद उनके निजके खेतोंमें मजदूरी करके थोड़ा-बहुत खानेको मिले तो ठीक है, नहीं तो—

षोड़शी—नहीं तो क्या?

सागर—नहीं तो आसामके चायके बगीचे तो हैं ही। क्यों मा, तुम्हें भी क्या याद नहीं पड़ता, अपने उस बेलडाँगामें पहले हम लोगोंके कितने घर भूमिज बरईयोंकी बस्ती थी?

षोड़शी—(गरदन हिलाकर) हाँ हाँ।

सागर—आज वे सब कहाँ हैं? कुछ तो चले गये कोयलेकी खानोंमें, कुछका चालान हो गया चायके बगीचोंको। मगर मैंने तो बचपनमें देखा है, उनके जमीन-जायदाद, हल-बैल, सब कुछ था। दो-मुट्ठी अन्नकी हैसियत उन सबके थी। आज उन लोगोंकी आधी जायदाद तो एककौड़ी नन्दके पास पहुँच गई और आधी रायसाहबके पास है।

षोड़शी—(दंग रहकर) अच्छा, सागर, ये बातें तूँने किससे सुनीं?

सागर—खुद हुजूरके ही मुँहसे।

षोड़शी—तो यह सब उन्हींके इरादे हैं?

सागर—(सोचकर)—क्या मालूम मा, पर मालूम होता है रायसाहब भी हैं इसमें।

षोड़शी—यह तो हुई तुम लोगोंकी बात, सागर। मगर मैं तो अकेली हूँ। जमींदार चाहें तो मेरे ऊपर भी जुल्म कर सकते हैं ?

सागर—सो तो नहीं जानता मा, सिर्फ इतना जानता हूँ कि तुम अकेली नहीं हो। (कुछ देर चुप रहकर) मा, हम लोगोंको अपना परिचय आप नहीं देना चाहते, गुरुकी मनाही है। (लाठीको जोरसे मुट्ठीमें दबाकर) हरिहर सरदारके भतीजे सागरका नाम दस-बीस कोसके लोग जानते हैं,—तुम्हारे ऊपर जुल्म करनेवाला आदमी तो मा, पचास गाँवमें भी कोई न मिलेगा।

षोड़शी—(दोनों आँखोंसे अकस्मात् चिनगारियाँ-सी निकल उठती हैं) सागर, यह क्या सच है ?

सागर—(चटसे झुककर और हाथकी लाठी षोड़शीके पैरोंके आगे रख-कर) अच्छा तो मा, यही आशीर्वाद करो कि मेरी बात झूठ न हो।

षोड़शी—(आँखोंकी दृष्टि एक बार जरा कोमल होकर फिर उसी तरह जलने लगती है) अच्छा, सागर, मैंने तो सुना है, तुम लोगोंको जानका डर नहीं करना चाहिए ?

सागर—(हँसकर) झूठा सुना है, यह भी तो मैं नहीं कहता मा।

षोड़शी—सिर्फ प्राण दे ही सकते हो, ले नहीं सकते ?

सागर—नहीं, ले नहीं सकते ? इस हुकुमके लिए कितनी भीख न माँगी होगी, पर किसी भी तरह हुकम तो तुम्हारे मुँहसे निकलवा ही न सका, मा।

षोड़शी—नहीं सागर, नहीं। ऐसी बात तुम लोग जबानपर भी न लाना, बेटा।

सागर—लेकिन मनसे तो उस बातको हटा नहीं सकता मा।

[पुजारीका प्रवेश।]

पुजारी—मन्दिरका द्वार बंद कर आया, मा।

षोड़शी—चाबी ?

पुजारी—यह रही मा। (चाबीका गुच्छा हाथमें देकर) रात हो गई, अब आज्ञा मिले, जाऊँ ?

षोड़शी—अच्छा, जाओ।

(पुजारीका प्रस्थान)

षोड़शी—सागर, फकीर साहब चले गये। वे कहाँ हैं, पता लगाकर मुझे बता सकता है बेटा ?

सागर—क्यों मा ?

षोड़शी—उनकी मुझे बड़ी ज़रूरत है। तुम लोगोंको छोड़कर उनसे बढ़कर शुभाकांक्षी मेरा कोई नहीं है।

सागर—मगर तुम्हींसे तो कितनी ही बार सुना है कि वे सिद्ध साधु पुरुष हैं। कहीं भी हों, उन्हें सच्चे मनसे बुलाते ही वे आ मौजूद होते हैं।

षोड़शी—(चौंककर) ठीक तो है सागर, इतनी बड़ी बातको मैं भूल कैसे गई थी ! अब मुझे चिन्ता नहीं, मेरे इतने बड़े दुःसमयमें वे बिना आये रह नहीं सकते।

सागर—मुझे भी यही विश्वास है। पर बातों ही बातोंमें रात बहुत हो गई मा, तुम आराम करो, मैं जाऊँ।

षोड़शी—अच्छा, जाओ।

सागर—(जरा हँसकर) कोई डर नहीं मा, सागर तुम्हें अकेला छोड़कर कहीं भी ज्यादा देर नहीं ठहर सकता। [प्रस्थान]

[अब तक षोड़शीकी संध्या आदि नित्य-क्रियाएँ नहीं हुई थीं, वह उनकी तैयारीमें लग जाती है।]

षोड़शी—सागरने कितनी बड़ी बात याद दिला दी ! फकीर साहब ! आप जहाँ भी हों, इस विपत्तिमें मुझे आपके दर्शन होंगे ही होंगे।

नेपथ्यसे—मैं आ सकता हूँ ?

षोड़शी—(चौंककर खड़ी हो जाती है और व्याकुल कण्ठसे कहती है) —आइए आइए,—मैं जो सर्वान्तःकरणसे आपहीको बुला रही थी !

[जीवानन्दका प्रवेश]

जीवानन्द—इतनी जबरदस्त पति-भक्ति कलिकालमें दुर्लभ है। मेरे लिए पात्र अर्घ्य आसन आदि कहाँ हैं ?

षोड़शी—(क्षण-भर सन्न रहकर, भयके साथ) अरे आप हैं ? आप क्यों आये ?

जीवानन्द—तुम्हें देखने। जरा कुछ डर गई हो मालूम होता है। डरनेकी ही बात है। पर चिल्लाना मत। साथमें पिस्तौल है, तुम्हारे डाकुओंका दल मारा ही जायगा, और कुछ नहीं कर सकता।

[षोड़शी चुपचाप खड़ी रहती है]

जीवानन्द—तो भी, दरवाजा बन्द करके जरा निश्चित होकर बैठा जाय। क्या कहती हो?

[दरवाजेकी तरफ जाकर हुड़का बन्द कर देते हैं]

षोड़शी—(मारे डरके कण्ठ-स्वर काँप उठता है) सागर नहीं है,—

जीवानन्द—नहीं है! नालायक गया कहाँ!

षोड़शी—आप लोग जानते हैं, इसीसे तो—

जीवानन्द—जानता हूँ इसलिए! मगर 'आप लोग' कौन? मैं तो कुछ भी नहीं जानता।

षोड़शी—निराश्रय होनेकी वजहसे ही तो आदमी लेकर मुझपर अत्याचार करने आये हैं! मगर आपका क्या बिगाड़ा है मैंने?

जीवानन्द—आदमी लेकर अत्याचार करने आया हूँ? तुमपर? कसम तुम्हारी, नहीं। बल्कि मन न जाने कैसा हो रहा था, इसीसे देखने आया हूँ।

[षोड़शीकी आँखोंमें आँसू आ रहे थे, इस मज़ाकसे वे बिल्कुल सूख जाते हैं। जीवानन्द पास बैठा हुआ उसके झुके हुए चेहरेकी तरफ लुब्ध-तृषित दृष्टिसे देखता है।]

जीवानन्द—अलका!

षोड़शी—कहिए!

जीवानन्द—तुम्हारे यहाँ तमाखू-अमाखूका इन्तज़ाम नहीं मालूम होता?

षोड़शी—(एक बार मुँह उठाकर फिर सिर झुकाकर खड़ी रहती है।)

जीवानन्द—(दीर्घ निश्वास लेकर) ब्रजेश्वरकी तकदीर अच्छी थी। देवी चौधरानीने उसे पकड़वा जरूर बुलाया था, पर अम्बरी तमाखू भी पिलाई थी और भोजन करानेके बाद दक्षिणा भी दी थी। बिदाईका जिक्र अभी नहीं छेड़ता;— अरे बंकिम बाबूकी वह पुस्तक* पढ़ी है कि नहीं?

षोड़शी—आपको पकड़वा बुलाती तो वैसी ही व्यवस्था की जाती,—उलहना देनेकी जरूरत ही न पड़ती।

जीवानन्द—(हँसकर) सो ठीक है। खींचातानी रस्सा-कसी यही सब तो लोग देखते हैं। भोजपुरी पियादा भेजकर पकड़वा बुलानेको तो सभी देखते हैं; पर जो पियादा आँखोंसे नहीं दीखता,—क्यों अलका, तुम्हारे शास्त्रग्रथोंमें उसे क्या कहते हैं? अतनु न? अच्छे हैं वे। (क्षण-भर नीरव रहकर)

* बंकिम बाबूका 'देवी चौधरानी' उपन्यास।

बहुत ही मामूली-सा अनुरोध था, पर अब चल दिया। तुम्हारे अनुचरोंको पता लग गया तो वे जमाईकी खातिरदारी न करेंगे। और तो और, ससुराल आया हूँ, इस बातपर वे शायद विश्वास ही न करना चाहेंगे।—सोचेंगे, जानके डरसे शायद झूठ बोल रहा है।

[मारे शरमके षोड़शी और भी झुक जाती है।]

जीवानन्द—तमाखूका धुआँ फिलहाल पेटमें न जानेसे भी काम चल जाता, पर ऐसी कोई चीज़, जो धुआँ न हो, पेटमें बगैर पहुँचे तो अब खड़ा नहीं रहा जाता। सचमुच नहीं है कुछ अलका ?

षोड़शी—'कुछ' क्या, शराब ?

जीवानन्द—(हँसकर सिर हिलाते हुए) अबकी गलती कर गई। उसके लिए और आदमी हैं, तुम नहीं। तुमने अपनेको समझनेके लिए मुझे काफी मौका दिया है,—और चाहे जो भी बुराई करूँ पर अस्पष्टताका अपवाद नहीं लगा सकता। लिहाजा, तुमसे अगर कुछ माँगना ही पड़े, तो ऐसी ही चीज़ माँगूँगा जो आदमीको जिलाये रखती है, मौतके रास्ते ढकेलती नहीं। दाल-भात, पूड़ी-मिठाई, चिउड़ा, जो भी हो, दो। बड़े जोरसे भूख लगी है। —नहीं है ?

[षोड़शी निर्निमेष दृष्टिसे देखती रहती है]

जीवानन्द—आज सवेरे मन अच्छा नहीं था। शरीरका जिक्र करना तो महज़ मज़ाक होगा, कारण, स्वस्थ शरीर किस चिड़ियाका नाम है, मैं जानता ही नहीं! सवेरे अचानक नदी किनारे घूमने निकल गया। कितना पैदल चला कह नहीं सकता,—लौटनेकी तबीयत न हुई। सूर्यदेव अस्त हो गये, फिर भी अकेले पानीके किनारे खड़े खड़े ऐसा अच्छा लगने लगा कि क्या बताऊँ। सिर्फ तुम्हारी याद आने लगी। खयाल आया, कचहरीमें अब तक काफी लोग इकट्ठे हुए होंगे, तुम्हें निर्वासित करनेकी व्यवस्था आज खतम ही करनी होगी। लौटकर सभामें शामिल हुआ, पर टिक न सका। किसी बहानेसे भागकर आ खड़ा हुआ तुम्हारे इस 'मनसा' के पेड़के पीछे।

षोड़शी—फिर ?

जीवानन्द—देखा, सागर सरदार और तुम खड़ी हो। बात-चीत सब सुनता रहा, मतलब समझनेमें भी देर न लगी। सोचा, हम जैसे साधु व्यक्तियोंने जो

इस प्रकारकी निर्बोध भैरवीको अलग कर देनेकी ठानी है, सो ठीक ही किया है। उस दिन रातको मकान घेरकर पुलिस-पियादे हथकड़ी लेकर आ पहुँचे थे, तुम्हारे मुँहसे जरा-सी बात निकलवानेके लिए मजिस्ट्रेट साहब तकने कितना जोर लगाया, पर तुमने कह दिया कि मैं अपनी इच्छासे यहाँ आई हूँ। और आज छोटी-सी एक आज्ञाके लिए सागरचन्दने कितनी आरजू-मिन्नत, कितनी खुशामद की,—पर तुम कह बैठीं कि ऐसी बात जबानपर भी मत लाना बेटा। मारे अभिमानके बेटाजी रूठा-सा मुँह करके चल दिये,—यह तो अपनी आँखोंसे देख चुका हूँ। मन ही मन साष्टांग प्रणाम करके मैंने कहा, 'जय चण्डीगढ़की माता चण्डीकी जय! अपनी इस अधम सन्तानपर तुम्हारी इतनी कृपा न होती तो क्या तुम इस औरतकी बार बार इस तरह बुद्धि लोप कर देतीं? अब एक बार इसे बिदा करके मुझे तख्तपर बिठा दो मा, जनार्दन और एककौड़ी, इन दोनों ताल-बेतालको साथ लेकर मैं ऐसी सेवा शुरू कर दूँगा कि एक दिनकी पूजाके जोरसे तुम्हारी मिट्टीकी मूर्ति मारे खुशीके एक दम पत्थरकी हो जायगी।' मगर भक्ति-तत्त्वकी इन सब बड़ी बड़ी बातोंपर न हो तो पीछे विचार होता रहेगा; पहले जरा भूखकी जलन मिट जाती,—भूखके मारे खड़ा नहीं रहा जाता। सचमुच कुछ है नहीं अलका?

षोड़शी—मगर घर जाकर तो मजेसे खा सकते हो!

जीवानन्द—अर्थात्, मेरे घरकी खबर तुम मुझसे ज्यादा जानती हो! (जरा हँस देता है।)

षोड़शी—जब आपने दिनभर कुछ खाया-पिया नहीं है, तब घरमें आपके खाने-पीनेका कोई इन्तजाम न हो, ऐसा भी कहीं हो सकता है?

जीवानन्द—हो क्यों नहीं सकता? मैंने खाया नहीं इसलिए, और कोई उपास किये थाली परोसे बाट जोहती रहे ऐसी व्यवस्था तो मैंने कर नहीं रक्खी है। फिर आज ख्वामख्वाह गुस्सा करनेसे फायदा क्या अलका? (फिर उसी तरह हलकी हँसी हँस देता है।)

जीवानन्द—मेरी जो शान्तिपूर्ण जीवन-यात्रा उस रोज अपनी आँखोंसे देख आई हो, शायद उसे भूल गई। तो फिर अब जाऊँ?

षोड़शी—(व्याकुल कण्ठसे) देवीका जरा-सा मामूली प्रसाद है, पर उसे क्या आप खा सकेंगे?

जीवानन्द—खूब मजेसे खा सकता हूँ। पर जरा-सा मामूली प्रसाद ? सो तो तुम सिर्फ अपने ही लिए लाई होगी अलका !

षोड़शी—नहीं तो क्या आपके लिए लाके रक्खा है, आप समझते हैं ?

जीवानन्द—(हँसते चेहरेसे) नहीं, सो नहीं समझता। मगर सोचता हूँ, तुम्हें वंचित रखना होगा।

षोड़शी—उस चिन्ताकी जरूरत नहीं। मुझे वंचित रखनेमें आपको कोई नया अपराध न लगेगा।

जीवानन्द—नहीं, अपराध अब मेरे लिए कुछ होता ही नहीं। मैं तो एकदम उसकी पहुँचके परे हूँ। मगर अचानक एक अजीब खयाल मेरे दिमागमें आया है अलका, अगर हँसो नहीं तो तुमसे कहूँ।

षोड़शी—कहिए।

जीवानन्द—मालूम होता है, अब भी अगर चाहूँ तो शायद जी सकता हूँ,—अब भी आदमीकी तरह,—पर ऐसा कोई नहीं है जो मेरा,—तुम्हीं सिर्फ ले सकती हो पापिष्ठका भार। लोगी अलका ?

षोड़शी—आप क्या कह रहे हैं ?

जीवानन्द—(आत्म-समर्पणके आश्चर्यपूर्ण स्वरमें) कह रहा हूँ कि मेरा सारा भार तुम ले लो अलका !

षोड़शी—(चौंककर क्षण-भर रुककर) अर्थात् मेरे जिस कलङ्कका आपने न्याय-विचार किया है, मेरे ही द्वारा उसे पक्का करा लेना चाहते हैं ? मेरी माको धोखा दे सके थे, पर मुझे न दे सकिएगा।

जीवानन्द—मगर वैसी कोशिश तो मैंने नहीं की अलका। तुम्हारा न्याय-विचार किया है, पर विश्वास नहीं किया। बार बार यही खयाल आया कि इस कठोर आश्चर्यमयी रमणीको जिसने अभिभूत किया है ऐसा पुरुष है कौन ?

षोड़शी—(विस्मित होकर) उन लोगोंने आपको उसका नाम नहीं बताया ?

जीवानन्द—नहीं। मैंने बार बार पूछा है, वे बार बार चुप रह गये हैं। खैर, जाने दो, अब मैं जाता हूँ, क्या कहती हो ?

षोड़शी—पर आपको तो कामकी बात करनी थी ?

जीवानन्द—कामकी बात ? पर क्या थी, सो मुझे अब याद नहीं आ रही है। सिर्फ यही बात याद आ रही है कि तुम्हारे साथ बात करना ही मेरा काम था। अलका, सचमुच ही क्या तुम्हारा फिरसे ब्याह हुआ था ?

षोड़शी—फिरसे कैसा ? सचमुचका व्याह मेरा सिर्फ एक ही बार हुआ है।

जीवानन्द—और तुम्हारी माने जो एक बार तुमको मुझे दिया था, वह क्या सच नहीं है ?

षोड़शी—नहीं, वह सच नहीं है। माने मेरे साथ जो रुपये दिये थे, आपने सिर्फ़ उन्हींको लिया था, मुझे नहीं लिया। ठगाईके सिवा उसमें लेशमात्र भी कहीं सत्य नहीं था।

जीवानन्द—(कुछ देर तक ध्यानमग्नकी भाँति बैठकर; मानो बहुत दूरसे कहता है—) अलका, तुम्हारी यह बात सच नहीं है।

षोड़शी—कौन-सी बात ?

जीवानन्द—तुमने जो समझ रक्खी है। सोचा था, उस कहानीको कभी किसीसे न कहूँगा, पर उस 'किसी' में तुम्हें नहीं डालते बनता। तुम्हारी माको धोखा दिया था, पर तुम्हें धोखा देनेका मौका भगवानने मुझे नहीं दिया। मेरा एक अनुरोध मानोगी ?

षोड़शी—कहिए।

जीवानन्द—मैं सत्यवादी नहीं हूँ; लेकिन, मेरी आजकी बातपर तुम विश्वास करो। तुम्हारी माको मैं जानता था, उनकी लड़कीको स्त्रीके रूपमें स्वीकार करनेकी मेरी मनसा नहीं थी,—मेरा लक्ष्य था सिर्फ उनके रुपयोंपर। मगर, उस रातको हाथों हाथ जब तुम्हें पा गया, तब 'नहीं' कहकर वापस कर देनेकी इच्छा भी फिर नहीं हुई।

षोड़शी—तो क्या इच्छा हुई ?

जीवानन्द—रहने दो, उसे तुम आज मत सुनना चाहो। शायद अन्त तक सुनके खुद ही समझ जाओगी, और उस समझनेमें नुकसानके सिवा मेरा फायदा नहीं होगा। मगर, इन लोगोंने जैसा तुम्हें समझाया था असलमें बात वैसी नहीं है,—मैं तुम्हें छोड़कर नहीं भागा।

षोड़शी—अपने न भागनेका इतिहास आप ही सुनाइए।

जीवानन्द—मैं बेवकूफ़ नहीं हूँ, अगर कहूँगा भी तो उसका पूरा नतीजा समझकर ही कहूँगा। तुम्हारी माके इतने बड़े भयानक प्रस्तावपर मैं क्यों राजी हो गया था, जानती हो ? मैंने एक स्त्रीका हार चुराया था;—सोचा था कि रुपये देकर उसे शांत कर दूँगा। वह तो शांत हो गई, पर पुलिसका वारण्ट शान्त न

हुआ। छह महीनेके लिए जेल चला गया,—वही जो पिछली रातमें निकल भागा था, उसके बाद फिर लौटनेका मौका ही नहीं मिला।

षोड़शी—(साँस रोके हुए) उसके बाद ?

जीवानन्द—(मुसकराकर) उसके बादका भी हाल बुरा नहीं। जीवानन्द बाबूके नाम और भी एक वारंट था। कई महीने पहले रेलगाड़ीमें एक सहयात्री मित्रका बैग उठाकर वे चम्पत हो गये थे। लिहाजा और भी डेढ़ साल। कुल मिलाकर दो साल लापता रहकर बीजगाँवके भावी जमींदार साहबने जब रंग मंच-पर पुनः प्रवेश किया तब कहाँ रही अलका, और कहाँ रही उसकी माँ।

[दोनों ही कुछ देर तक निस्तब्ध रहते हैं।]

जीवानन्द—फिर एक दफे सभामें जाना है। अलका, तो अब जाता हूँ।

षोड़शी—सभामें आपके लिए बहुत-सा काम पड़ा होगा, गये बिना गुजर नहीं। पर बिना कुछ खाये भी तो न जा सकेंगे ?

जीवानन्द—न जा सकूँगा ? तो ले आओ। लेकिन बड़ी बुरी आदत है मेरी, खाकर फिर हिला नहीं जाता मुझसे।

षोड़शी—न जा सकें, तो यहीं आराम कीजिएगा।

जीवानन्द—आराम करूँगा ? अगर कहीं सो गया अलका ?

षोड़शी—(हँसकर) उसकी सम्भावना तो है ही। मगर भाग न जाइएगा कहीं। मैं खानेको ले आऊँ। [प्रस्थान]

[घरके कोनेमें एक पत्रका टुकड़ा पड़ा था, जीवानन्दकी निगाह उसपर पड़ती है और उसे उठाकर वह पढ़ डालता है। उसका क्षण-भर पहलेका सरस और प्रसन्न चेहरा गम्भीर और अत्यन्त कठोर हो जाता है। षोड़शी भोजनका पात्र हाथमें लिये प्रवेश करती है। उसे याद आता है कि आसन नहीं बिछाया गया है, इसलिए वह पात्रको जल्दीसे एक तरफ रखकर आसनके अभावमें कम्बल ही दोहरा-तिहरा करके बिछा देती है; और जैसे ही उसपर अपना एक कपड़ा धरी करके बिछाने लगती है, वैसे ही जीवानन्द बोल उठता है—]

जीवानन्द—यह क्या हो रहा है ?

षोड़शी—आपके बैठनेको जगह कर रही हूँ। अकेला कम्बल छिदेगा।

जीवानन्द—छिदेगा, मगर ज्यादती तो और भी ज्यादा छिदेगी। खातिर-दारी जैसी चीजमें मिठास जरूर है, पर उसका ढकोसला करनेमें न तो मिठास है और न स्वाद ही। इसे बल्कि और किसीके लिए रहने दो।

[षोड़शी बात सुनकर दंग रह जाती है ।]

जीवानन्द—(हाथका कागज दिखाकर) फाड़ी हुई चिट्ठी है, पूरी भी नहीं है । जिनको लिखा था, उनका नाम जान सकता हूँ क्या ?

षोड़शी—किसका नाम ?

जीवानन्द—जो दैत्य-वधके लिए चण्डीगढ़में अवतीर्ण होंगे, जो द्रौपदीके सखा हैं, जो—और कहूँ ?

[इस व्यंगोक्तिका षोड़शी जवाब नहीं दे सकती, परन्तु उसकी आँखोंपरसे क्षणभर पहलेकी मोहकी यवनिका चीर चीर होकर फट जाती है ।]

जीवानन्द—इस आह्वान-पत्रकी प्रत्येक पंक्ति जिनके कानोंमें अमृत बरसायेगी उनका नाम ?

षोड़शी—(अपनेको संयत करके) उनके नामकी आपको जरूरत ?

जीवानन्द—जरूरत है क्यों नहीं ! पहलेसे मालूम हो जानेसे शायद आत्म-रक्षाकी कोई तरकीब निकाल सकूँ ।

षोड़शी—आत्म-रक्षाकी जरूरत तो अकेले आपहीको नहीं है, चौधरी साहब, मुझे भी हो सकती है ।

जीवानन्द—हो क्यों नहीं सकती !

षोड़शी—तो उस नामको आप नहीं सुन सकते । कारण, मेरी और आपकी आत्म-रक्षा करनेका उपाय एक ही साथ नहीं हो सकता ।

जीवानन्द—अच्छी बात है, सो अगर न हो तो रक्षा पाना मेरे ही लिए आवश्यक है और उसमें रंचमात्र भी त्रुटि न होगी, जान रखना ।

[षोड़शी निरुत्तर रह जाती है ।]

जीवानन्द—तुम जवाब न दो, पर तुम्हारे इस वीर पुरुषका नाम मुझे मालूम न हो सो बात नहीं ।

षोड़शी—मालूम क्यों न होगा ! संसारके वीर पुरुषोंमें परस्पर परिचय तो रहना ही चाहिए ।

जीवानन्द—सो तो ठीक है । पर इस कापुरुषको बार बार अपमानित करनेका भार तुम्हारे वीर सह सकें, तब है । खैर जाने दो, इस चिट्ठीको फाड़ क्यों डाला ?

षोड़शी—इसका जवाब मैं नहीं दूँगी ।

जीवानन्द—मगर यह सीधी निर्मल साहबको न लिखकर उनकी स्त्रीको क्यों लिखी गई ? यह शब्द-भेदी बाण चलाना क्या उन्हींका सिखाया हुआ है ?

षोड़शी—इसके बाद ?

जीवानन्द—इसके बाद आज मेरा सन्देह जाता रहा। इस मित्रकी बात मैंने औरोंके मुँह सुनी है; पर राय साहबसे जितने ही मैंने प्रश्न किये हैं; उतनी ही वे चुपकी साध गये हैं। आज समझमें आया कि उन्हींका आक्रोश सबसे ज्यादा क्यों है ?

षोड़शी—(चौंककर) निर्मलके सम्बन्धमें आपने क्या सुना है ?

जीवानन्द—सभी कुछ। तुम्हारे चौंकने और गलेकी मीठी आवाजसे मुझे हँसी आनी चाहिए थी, मगर हँस न सका—यह बात मेरे लिए आनन्द-जनक नहीं है। उस आँधी-मेहमें, अन्धेरी रातमें, अकेले उसका हाथ पकड़कर घर पहुँचा देना याद है ? उसके गवाह हैं।—गवाह सुसरे न जाने कहाँ छिपे रहते हैं पहलेसे, कुछ मालूम ही नहीं हो सकता। मैं जब गाड़ीसे वेग लेकर भागा था, सोचा था किसीने नहीं देखा—

षोड़शी—अगर सचमुच ही ऐसा किया हो, तो क्या वह ऐसे कोई बड़े दोषकी बात है ?

जीवानन्द—मगर छिपानेकी कोशिश ? चिट्ठीके यह टुकड़े ? खुद ही जरा पढ़के देखो सही, क्या मालूम होता है ? मेरी तरह ये भी एक बार तुम्हारा न्याय करने बैठे थे न ? देखता हूँ, तुम्हारा न्याय करनेमें खतरा है।

[इतना कहकर जीवानन्द मुसकरा देता है।
षोड़शी निरुत्तर रहती है।]

जीवानन्द—इसे मैं साथ लिये जाता हूँ। जरूरत पड़नेपर यथा-स्थान पहुँचा देनेमें भी त्रुटि न होगी। ये थोड़ी-सी पंक्तियाँ जब मेरी,—पुरुषकी आँखोंको ही धोखा नहीं दे सकीं, तो उम्मीद है कि हैमवतीको भी चकमा न दे सकेंगी।

[षोड़शी निरुत्तर रहती है]

जीवानन्द—क्यों, बहुत-सी बातें जानता हूँ न ?

षोड़शी—हाँ।

जीवानन्द—तो सब सच हैं न ?

षोड़शी—हाँ, सच है।

जीवानन्द—(आहत होकर) ओफ्; सच है ! (टिमटिमाते हुए दीपककी जोतको जरा और भी तेज करके षोड़शीके चेहेरेके तरफ तीक्ष्ण दृष्टिसे देखकर) तो अब तुम क्या करोगी ?

षोड़शी—आप मुझे क्या करनेको कहते हैं ?

जीवानन्द—तुम्हें ? (कुछ देर स्तब्ध रहकर, दीपककी जोतको और भी तेज करके) तो ये लोग सभी जो तुम्हें असती बताकर—

षोड़शी—इन लोगोंके खिलाफ तो मैंने आपसे फरियाद की नहीं। मुझे क्या करना होगा, सो बताइए। कारण दिखानेकी जरूरत नहीं।

जीवानन्द—सो ठीक है ! परन्तु, सभी झूठ बोलते हैं और तुम अकेली ही सत्यवादिनी हो, क्या यही मुझे तुम समझाना चाहती हो अलका ?

[षोड़शी निरुत्तर रहती है।]

जीवानन्द—जवाब तक नहीं देना चाहतीं ?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं।

जीवानन्द—यानी मेरे सामने कैफियत देनेकी अपेक्षा बदनाम होना भी अच्छा समझती हो ! अच्छी बात है, सब कुछ स्पष्ट मालूम हो गया।

[व्यंगपूर्वक हँसने लगता है।]

षोड़शी—स्पष्ट मालूम हो जानेके बाद मुझे क्या करना होगा, केवल यही बताइए !

[इस उत्तरसे जीवानन्दका क्रोध और अधैर्य सौ-गुना बढ़ जाता है।]

जीवानन्द—क्या करना होगा, सो तुम जानो। मगर मुझे देव-मन्दिरकी पवित्रता बचानी ही होगी। इसकी यथार्थ अभिभावक तुम नहीं, मैं हूँ। पहले क्या हुआ करता था मैं नहीं जानता। मगर अबसे भैरवीको भैरवीकी तरह ही रहना होगा, नहीं तो जाना पड़ेगा।

षोड़शी—अच्छी बात है, यही होगा। यथार्थ अभिभावक कौन है, इस विषयमें मैं बहस नहीं करूँगी। आप लोग अगर समझते हों कि मेरे चले जानेसे मन्दिरकी भलाई होगी, तो मैं चली जाऊँगी।

जीवानन्द—तुम जाओगी, यह ठीक है। क्योंकि, तुम चली जाओ, ऐसी ही व्यवस्था मैं करूँगा।

षोड़शी—क्यों गुस्सा हो रहे हैं, मैं तो सचमुच ही जाना चाहती हूँ। पर आपपर यह भार रहा कि मन्दिरकी वास्तवमें भलाई हो।

जीवानन्द—कब जाओगी ?

षोड़शी—जब हुक्म देंगे। कल, आज, अभी,—

जीवानन्द—मगर निर्मल बाबू ? जमाई साहब ?

षोड़शी—(कातर कण्ठसे) उनका नाम अब मत लीजिए।

जीवानन्द—मेरे मुँहसे उनका नाम तक तुमसे नहीं सहा जाता! अच्छी बात है। लेकिन तुम्हें देना क्या होगा ?

षोड़शी—कुछ भी नहीं।

जीवानन्द—इस घरको भी छोड़ देना पड़ेगा, जानती हो ? यह भी देवीका है।

षोड़शी—जानती हूँ। अगर बन सका, तो कल ही छोड़ दूँगी।

जीवानन्द—कहाँ जाना ठीक किया है ?

षोड़शी—यहाँ नहीं रहूँगी, बस, इससे ज्यादा कुछ भी तय नहीं किया एक दिन कुछ जाने बिना ही भैरवी हुई थी, आज विदा होते समय इससे ज्यादा नहीं सोचूँगी। आप यहाँके जमींदार हैं, चण्डीगढ़की भलाई-बुराईका भार आपके ऊपर छोड़कर इस अन्तिम विदाईके समय अब दुविधा नहीं करूँगी। पर, मेरे पिता बहुत ही कमजोर हैं, उनपर भरोसा करके कहीं आप निश्चिन्त न हो जाइएगा।

जीवानन्द—तुम सचमुच ही चली जाना चाहती हो क्या ?

षोड़शी—और मेरी दुःखी गरीब किसान प्रजा हैं,—किसी दिन उन्हींका सब कुछ था,—आज उन जैसा निःस्व, निरुपाय और गरीब और कोई न होगा। डाकू बताकर बिना कसूर लोगोंने उनको जेलखाने भिजवा दिया है। उनके सुखदुःखका भार भी मैं आपपर ही छोड़े जाती हूँ।

जीवानन्द—अच्छा, सो होता रहेगा। वे चाहते क्या हैं, बताओ तो ?

षोडशी—सो वे ही आपको बतायेंगे।

[इतना—कहकर सहसा जंगलेमेंसे बाहर देखती है और रसोईकी अरगनीपरसे अँगोछा धोती उठा लेती है।]

षोड़शी—मेरा नहाने जानेका समय हो गया—

जीवानन्द—नहानेका समय ! इतनी रातमें !

षोड़शी—रात अब नहीं है,—अब आप घर जाइए।

[जानेको उद्यत होती है।]

जीवानन्द—(*व्यग्र कण्ठसे*) पर मेरी तो सभी बातें बाकी रह गईं ?

षोड़शी—रह जाने दीजिए, आप घर जाइए।

जीवानन्द—नहीं। न जाने कहाँ मैं बड़ी भारी गल्ती कर गया हूँ अलका, बात मेरी खतम न होनेतक तो मैं—

षोड़शी—नहीं, सो नहीं होनेका, आप घर जाइए। मेरा आपने बहुत नुकसान किया है, इस जीवनका अन्तिम सर्वनाश मैं आपको नहीं करने दूँगी।

जीवानन्द—अच्छा, मैं जाता हूँ अलका। [प्रस्थान]

द्वितीय दृश्य

चण्डीगढ़ ग्राम। चड़कका स्वाँग

गीत—१

बड़े फेरमें भोला बाबा पड़ गये अबकी बार,
अभिमानी गौरी रानीने कहा न 'प्राणाधार!'
बहुत दिनोंमें भोला बाबा आये हैं सुसराल,
सोचा था आयेगी गौरी, पहनें साड़ी लाल।
चन्द्रमुखी हँस-हँसके जब बोलेगी मीठी बानी,
भोलाके तब दर्द-दिलकी मर जायेगी नानी।
बिना कहे क्यों चली आई यों, उनके दिलकी रानी-
इसी बातपर रूठे फिरते बमभोला अभिमानी।
गौरीने जब देखा अपने शंकरजीका हाल,
कभी मसान, कभी भूतोंमें हरदम हैं बेहाल।
अबकी शान्त-शिष्ट कर दूँगी, सचमुच होंगे भोले,
भेद सभी खुल जायेंगे तब बिना किसीके खोले।
भस्म-भभूत रमाके तुमने दुनिया छानी सारी,
अब गौरीके पाले पड़ बन जाओ प्रेम-पुजारी।

गीत—२

गौरीजीकी बिदा कराने खुद आये शंकरजी,
गौरीने तब साफ कह दिया, 'मेरी जरा न मरजी।'

पाँच साल 'पंचागिनि तप' कर सौंपी थी जननीने
जिसे, उसे तू बाँध न पाई, ऐसा सुना किसीने ?
(क्या) किसी सौतके पड़े फेरमें, इससे हुए पराये,
प्रेम-डोरमें बँधे न तुझसे, तेरे ही मनभाये।
(अरी !) फेंकनकी हैं चीज नहीं, वे तेरे भाग-सितारे,
नहा-धुलाके मना-मुनूके, कह दे मुँहसे 'प्यारे !'

तृतीय दृश्य

षोड़शीकी कुटीर

[निर्मलका प्रवेश]

षोड़शी—यह क्या, रातके तीसरे पहर ऐसे अकस्मात् आप यहाँ कैसे निर्मल बाबू ?

[निरुत्तर खड़े रहते हैं ।]

षोड़शी—(हँसकर) अच्छा, समझ गई । जानेके पहले शायद छिपके एक बार देखने चले आये हैं, न ?

निर्मल—आप क्या अन्तर्यामिनी हैं ?

षोड़शी—इसके बिना क्या भैरवीगीरी की जा सकती है निर्मल बाबू ? पर यहाँ उजाला नहीं है,—चलिए, मेरी कोठरीमें चलकर बैठिए ।

निर्मल—रातको अकेले मुझे कोठरीमें ले जाना चाहती हैं ।—आपका साहस तो कम नहीं है !

षोड़शी—और उस दिन रातको अन्धेरेमें जब हाथ पकड़के नदी-मैदान पार करती हुई ले गई थी, तब आपको भयके लक्षण दिखाई दिये थे क्या ? उस दिन भी तो ऐसे ही अकेले थे !

निर्मल—सचमुच ही आपके साहसकी सीमा नहीं ।

षोड़शी—सीमा रह कैसे सकती है निर्मल बाबू, भैरवी ठहरी जो । आइए, भीतर आइए !

निर्मल—नहीं, भीतर अब न जाऊँगा, मुझे अभी जाना है ।

षोड़शी—तो फिर यहीं बैठिए ।

[दोनों बैठ जाते हैं ।]

षोड़शी—तो फिर आज चला जाना ही तय रहा ?

निर्मल—नहीं, आजका जाना स्थगित रहा । रातको घर जाकर सुना कि आज शामको मन्दिरमें आपका फैसला होगा । उस सभामें मैं मौजूद रहना चाहता हूँ ।

षोड़शी—किस लिए ? महज कुतूहल है, या मेरी रक्षा करना चाहते हैं ?

निर्मल—जी जानसे कोशिश करूँगा इसकी ।

षोड़शी—अगर हानि हो, कष्ट हो, ससुरके साथ विच्छेद हो, तो भी ?

निर्मल—हाँ, तो भी ।

[षोड़शी हँस देती हैं ।]

निर्मल—(मुस्कराते हुए) आप तो हँस दीं ! विश्वास नहीं होता ?

षोड़शी—होता है । मगर हँस रही हूँ दूसरी एक बातपर । सुना है, पहले की भैरवियाँ परदेशी आदमियोंको भेड़ बनाकर रखती थीं । अच्छा, भेड़ोंको लेकर वे क्या करती थीं निर्मल बाबू ? चराती फिरती थीं या उन्हें लड़ा लड़ा कर तमाशा देखा करती थीं ? (बच्चोंकी तरह खूब जोरसे हँस पड़ती है ।)

निर्मल—(मजाकमें शामिल होता हुआ खुद भी हँसकर) और हो सकता है, कभी कभी माता चण्डीके सामने बलि चढ़ाकर खाया भी करती हों !

षोड़शी—यह तो डरकी बात है, निर्मल बाबू !

निर्मल—(हँसकर सिर हिलाता हुआ) डर थोड़ा-बहुत तो है ही ।

षोड़शी—थोड़ा-बहुत ही अच्छा है । हैमको भी सावधान कर देना चाहिए ।

निर्मल—इसके मानी ?

षोड़शी—मानी सभी बातोंके थोड़े ही होते हैं । (हँसकर) मेहमानकी खातिरदारी तो हो चुकी । हँसी-खुशीसे जितनी कर सकती थी उतनी ही,—उससे ज्यादा तो पूँजी नहीं है भाई । अब, आओ कुछ कामकी बातें कर लें ।

निर्मल—कहिए ?

षोड़शी—(गम्भीर होकर) दो आदमी देवताको वंचित करना चाहते हैं, एक राय साहब और दूसरे जमींदार—

निर्मल—और एक आपके पिता ।

षोड़शी—पिता ! हाँ, वे भी हैं ।

निर्मल—अपने ससुरकी बात तो मैं समझता हूँ और आपके पिताकी बात भी कुछ कुछ समझमें आती है, पर इन जमींदार-प्रभुकी बात कुछ समझमें ही नहीं आती। वे किस लिए आपके साथ दुश्मनी भँजा रहे हैं?

षोड़शी—देवीकी बहुत-सी जमीन वे अपनी बताकर बेच देना चाहते हैं। पर मेरे रहते ऐसा हरगिज नहीं हो सकता।

निर्मल—(हँसकर) सो मैं सँभाल लूँगा।

षोड़शी—मगर और भी बहुत-सी बातें हैं जिन्हें शायद आप न सँभाल सकेंगे।

निर्मल—सो कौन-सी बातें हैं?—एक तो आपकी झूठी बदनामी है।

षोड़शी—(शान्त स्वरसे) उसकी मुझे चिन्ता नहीं। बदनामी सच्ची हो चाहे झूठी, उसीको लेकर ही तो भैरवीका जीवन है, निर्मल बाबू। मैं यही बात उन लोगोंसे कहना चाहती हूँ।

निर्मल—(आश्चर्यके साथ) अपने मुँहसे यह कहना तो स्वीकार करनेके बराबर है!

षोड़शी—सो हो सकता है।

निर्मल—मगर वे तो कहते हैं—

षोड़शी—कौन कहते हैं?

निर्मल—बहुत-से कहते हैं कि उस समय, यानी मजिस्ट्रेट आये थे उस रातको, आपकी गोदमें ही—

षोड़शी—उन लोगोंने देखा था क्या? हो सकता है, मुझे ठीक याद न हो; अगर देखा हो तो सच है। उनकी तबीयत उस दिन बहुत ज्यादा खराब थी, मेरी गोदमें सिर रखकर ही वे पड़े थे।

निर्मल—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) फिर उसके बाद?

षोड़शी—किसी तरह दिन कटे जा रहे हैं, पर उसी दिनसे किसी बातमें मेरा मन नहीं लग रहा है, सभी कुछ मानों झूठा-सा मालूम हो रहा है।

निर्मल—क्या झूठा-सा?

षोड़शी—सभी कुछ। धर्म, कर्म, व्रत, उपवास, देव-सेवा,—इतने दिनोंका किया-धरा सब कुछ—

निर्मल—तो किस लिए फिर भैरवीका आसन रखना चाहती हो?

षोड़शी—ऐसे ही। और अगर आप कहें, इसकी कोई जरूरत नहीं—

निर्मल—नहीं नहीं, मैं कुछ नहीं कहता। अच्छा अब मैं चला। आपका न जाने कितना काम हर्ज कर दिया।

षोड़शी—मेहमानकी खातिरदारी, मित्रकी मर्यादा रखना, यह क्या कोई काम नहीं है निर्मल बाबू ?

निर्मल—सवेरा हो आया, अब चलूँ ?

षोड़शी—अच्छा जाइए। मेरा भी नहानेका वक्त निकला जा रहा है, मैं भी जाती हूँ। [दोनोंका प्रस्थान।]

[सागर सरदार और फकीरका प्रवेश]

सागर—नहीं, यह नहीं हो सकता,—हरगिज नहीं हो सकता। फकीर साहब, मा शायद कह रही हैं कि सब कुछ छोड़ छाड़के चली जायँगी। आपसे कहता हूँ मैं, ऐसा नहीं हो सकता।

फकीर साहब—क्यों नहीं हो सकता सागर ?

सागर—सो नहीं जानता। मगर जाना नहीं हो सकता। जानेसे हम सब उनके दीन दुखी किसान रहेंगे कहाँ ? जियेंगे कैसे ?

फकीर—पर तुम लोगोंने क्या सुना नहीं कि षोड़शी कितनी लज्जा और घृणासे सब त्याग कर जा रही है ?

सागर—सुना है। इसीसे तो औरोंकी तरह हम लोगोंकी भी समझमें नहीं आता कि माने साहबके हाथसे उस रातको जमींदारको बचाया क्यों ?

[क्षणभर स्तब्ध रहकर]

सागर—समझमें आवे या न आवे फकीर साहब, मगर इतना तो समझता ही हूँ कि जिन्हें मा कहकर पुकारा है, सन्तान होकर हम उनका न्याय करने नहीं बैठेंगे।

फकीर—तुम कुछ लोग न्याय न करो तो क्या चण्डीगढ़में उनके न्याय करनेवाले आदमियोंकी कमी रहेगी सागर ?

सागर—लेकिन वे ही लोग क्या आदमी हैं ? हम उनके लड़के हैं,—हम लोगोंके हृदयके विश्वाससे क्या उन लोगोंका बाहरी न्याय बड़ा हो जायगा, फकीर साहब ? उन लोगोंको क्या हम लोग पहचानते नहीं ? एक दिन जब हम लोगोंका सर्वस्व छीन लिया था उन लोगोंने,—वह भी तो ऐसी ही सचाई थी, और जब जेलखाने भिजवाया था, तब भी सब ऐसे ही सच्चे गवाहोंके जोरसे।

फकीर—सो मैं जानता हूँ।

सागर—लेकिन सब बातें तो आपको मालूम नहीं। हम चचा-भतीजे सजा भुगतकर घर लौटे। हम लोगोंने कहा, मा हम लोग तो मरे। माने गुस्सेमें आकर कहा, तुम लोग डाकू हो, तुम लोगोंका मर जाना ही अच्छा है। हम लोग रूठकर लौट आये। चचाने कहा, भगवान् गरीबोंका विश्वास करनेवाला कोई नहीं। दूसरे दिन सवेरे माने हम लोगोंको बुलवाकर कहा, तुम लोगोंके साथ मैंने बड़ा भारी अन्याय किया है, मुझे तुम लोग क्षमा करो। तुम लोगोंका कोई विश्वास न करे, पर मैं विश्वास करती हूँ। अब भी बीस बीघेके करीब जमीन है मेरी, उसे तुम लोग बर-बाँट लो। चण्डीदेवीका लगान तुम जो चाहो दिया करना, लेकिन खराब रास्तेपर कभी कदम न रखना, इतनी ही मेरी शर्त है।

फकीर—लेकिन लोग जो कहते हैं—

सागर—कहा करें। सिर्फ मा जान जायँ कि हम लोगोंका विश्वास जैसाका तैसा ही है, बस। जानते हैं फकीर साहब, हम लोगोंकी वजहसे ही एककौड़ी उनका दुश्मन है, हम लोगोंके कारण ही राय साहब उनके शत्रु हो रहे हैं। और मजा यह कि वे जानते ही नहीं कि किसकी दयासे वे जीते हैं।

फकीर—पर मुझे तुम लोग क्यों पकड़ लाये ?

सागर—क्यों ? सुना है कि मुसलमान होकर भी तुम उनके गुरुसे भी बड़े हो। तुम्हारे सिवा माको और कोई भी नहीं रोक सकता।

फकीर—मगर इतना बड़ा अनुचित अन्याय्य निषेध मैं करूँगा क्यों सागर!

सागर—करोगे आदमीकी भलाईके लिए।

फकीर—पर षोड़शी तो घरपर नहीं है। अबेर हो गई, मैं भी तो और ठहर नहीं सकता। अब मैं जाता हूँ।

सागर—नहीं ठहर सकोगे ? मना नहीं करोगे ? मगर इसका नतीजा अच्छा नहीं होगा।

फकीर—ऐसी बातें जबानपर भी न लाना सागर।

सागर—मा भी यही बात कहती हैं, ऐसी बात जबानपर भी न लाना सागर। अच्छी बात है, जबानपर न लाऊँगा,—हम लोगोंके मनकी मनमें ही रहे। [फकीरका प्रस्थान।]

सागर—संन्यासी फकीर हो तुम, जानते नहीं डकैतोंके हिरदेकी आगको। हम लोगोंका सब कुछ चला गया है, इसपर मा भी अगर छोड़कर चली गई तो हम बाकी कुछ भी न रक्खेंगे। [प्रस्थान]

[निर्मल और षोड़शीका प्रवेश]

षोड़शी—बुला ले आई क्या ऐसे ही ? छि, छि, खड़े खड़े क्या अंट-संट सुन रहे थे बताइए तो ! देवीके मन्दिरमें, उनके आँगनके बीचमें, इकट्ठे होकर कुछ कायर मिलकर न्याय करनेके बहाने दो असहाय स्त्रियोंकी गन्दी बदनामी कर रहे हैं,—उनमें भी एक मर चुकी है और दूसरी अनुपस्थित ! आइए, मेरे घरमें।

[दरवाजेपर आसन बिछा था। निर्मलको आदरके साथ बिठाकर षोड़शी वहीं पास ही बैठ जाती है।]

षोड़शी—अपने शायद कहा था कि मेरे मामले-मुकद्दमेका सारा भार आप अपने ऊपर ले लेंगे। क्या यह सच है ?

निर्मल—हाँ, सच है।

षोड़शी—मगर क्यों लेंगे ?

निर्मल—शायद आपके प्रति अन्याय हो रहा है इसलिए।

षोड़शी—मगर और कुछ तो नहीं समझ रहे हैं ? (इतना कहकर मुसकरा देती है) जाने दीजिए, सब बातोंका जवाब देना ही होगा ऐसा कुछ शास्त्रका वचन नहीं है। खासकर इस जटिल शास्त्रका, है न ? अच्छा, इसे जाने दीजिए। मुकद्दमेका भार तो जैसे आपने ले लिया, लेकिन यदि हार गई तो उसका भार कौन लेगा ? तब पीछे कदम तो न रक्खेंगे ?

निर्मल—नहीं, तब भी नहीं।

षोड़शी—ओफ-हो ! परोपकारका कैसा आडम्बर है ! (हँसकर) अगर मैं हैम होती, तो ऐसी परोपकार-वृत्तिका खातमा ही कर देती। मैं उतनी भलीमानस नहीं,—मेरे निकट धोखा-धड़ी नहीं चलती। रात-दिन आँखों ही आँखोंमें रखा करती।

निर्मल—(विस्मय, भय और आनन्दसे) आँखों ही आँखोंमें रखनेसे ही क्या रक्खा जा सकता है षोड़शी ? इसका बन्धन जहाँ शुरू होता है, आँखोंकी दृष्टि तो वहाँ पहुँचती ही नहीं, इस बातको क्या आज तक जान नहीं सकीं तुम ?

षोड़शी—जान क्यों न सकी! (हँस देती है। बाहर किसीके आनेकी आहट सुनकर गर्दन उठाकर) लीजिए, आ गये वे।

निर्मल—कौन? फकीर साहब?

षोड़शी—नहीं, जमींदार साहब। कह दिया था, सभा भंग होनेपर जाते वक्त मेरी कुटियामें एक बार आकर पद-धूलि दीजिएगा। इसीसे शायद देने आये हैं।

निर्मल—(विरक्त और संकोचसे जड़वत् होकर) तो आपने यह बात मुझसे कही क्यों नहीं?

षोड़शी—खूब! एक बार 'तुम', एक बार 'आप'! (हँसकर) डरनेकी कोई बात नहीं, वे बहुत शरीफ आदमी हैं; लड़ते नहीं। इसके सिवा आपसे उनका परिचय भी नहीं,—यह भी एक लाभ है। (दरवाजेके पास जाकर स्वागत करते हुए) आइए।

जीवानन्द—(प्रवेश करते ही ठिठककर खड़े होकर) आप! निर्मल बाबू हैं शायद?

षोड़शी—हाँ, 'आपके मित्र' कहकर परिचय दिया जाय तो शायद अत्युक्ति न होगी।

जीवानन्द—(हँसकर) अजीब बात है! मित्र नहीं तो क्या हैं? इन्हीं लोगोंकी कृपासे तो टिका हुआ हूँ; नहीं तो मामाकी जमींदारी पाने तक जैसी जैसी कार्रवाइयाँ की हैं, उनसे चण्डीगढ़के शान्ति-कुञ्जके बदले अब तक अण्डमानके शिविरमें जाकर रहना पड़ता।

षोड़शी—चौधरी साहब, वकील-बैरिस्टर बड़े आदमी हैं इसलिए क्या सारी वाहवाही उन्हें ही मिलेगी? अण्डमान वगैरह बड़े मामलोंमें न सही, पर छोटे हैं इसलिए इस देशके शिविर भी तो मनोरम स्थान नहीं,—गरीब होनेसे क्या भैरवियोंको जरा-सा भी धन्यवाद नहीं मिल सकता?

जीवानन्द—(लज्जित होकर) धन्यवाद पानेका समय पाते ही दर मिलेगा।

षोड़शी—(हँसकर) यही, जैसे सभामें खड़े होकर अर्जी हाल ही एक बार दे आये हैं!

[जीवानन्द स्तब्ध हो जाता है।]

षोड़शी—निर्मल बाबू न होते तो आज मैं आपसे खूब लड़ती। छिः, यह

क्या किसी भी पुरुषके लिए शोभा देता है? इसके सिवा जरूरत क्या थी इसकी बताइए तो? उस दिन इसी घरमें बैठकर तो आपसे कहा था, आप मुझे जो आज्ञा देंगे मैं उसका पालन करूँगी। आप भी अपना हुक्म साफ साफ दे गये थे। यह लीजिए सन्दूककी चाबी और यह लीजिए हिसाब। (आँचलसे सन्दूककी चाबी खोलकर और ताकपरसे एक खारुएसे मढ़ा मोटा खाता उतारकर जीवानन्दके पैरोंके पास रख देती है।) माताके जो कुछ अलङ्कार हैं, जो भी कुछ कागजात हैं, सब आपको सन्दूकमें धरे मिलेंगे और एक कागज इस खातेमें और मिलेगा, जिससे मैंने भैरवीका सारा दायित्व और कर्तव्य छोड़ते हुए दस्तखत कर दिये हैं।

जीवानन्द—(अविश्वास करके) कहती क्या हो! मगर त्याग किया किसके पास?

षोड़शी—उसीमें लिखा है, देख लीजिएगा।

जीवानन्द—अगर यही बात है तो चाबियाँ उन्हींको क्यों नहीं दे दीं?

षोड़शी—उन्हींको तो दी हैं।

जीवानन्द—(मलिन मुख और संदिग्ध कण्ठसे) मगर, मैं तो इन्हें ले नहीं सकता षोड़शी। खातेमें लिखी हुई चीजोंसे सन्दूककी चीजोंका मेल होगा, इस बातपर मैं कैसे विश्वास कर लूँ? तुम्हें जरूरत हो, तो तुम पाँच पंचोंके सामने समझा देना।

षोड़शी—(गर्दन हिलाकर) मुझे इसकी जरूरत नहीं। मगर चौधरी साहब, आपका भी यह कहना चल नहीं सकता। आँखें मींचकर जिसके हाथसे जहर लेकर खानेकी हिम्मत हुई थी, उसके हाथ आज चाबी लेनेकी हिम्मत नहीं पड़ती, इस बातको मैं नहीं मानती। लीजिए।

[खाता और चाबियोंका गुच्छा उठाकर एक तरहसे जबरदस्ती जीवानन्दके हाथमें दे देती है।]

षोड़शी—आज मैं जी गई। (कोमल कण्ठसे) सिर्फ एक भार आपपर और छोड़ जाऊँगी, वह है मेरे गरीब-दुखी किसानोंका भविष्य। मैं सौ सौ बार चाहनेपर भी उनकी भलाई नहीं कर सकी हूँ,—आप आसानीसे कर सकते हैं। (निर्मलके प्रति) मेरी बात-चीत सुनकर आप क्या आश्चर्यमें पड़ गये हैं निर्मल बाबू?

निर्मल—(सिर हिलाकर) आश्चर्य नहीं, मैं लगभग अभिभूतकी-सी स्थितिमें आ पड़ा हूँ। भैरवीका आसन त्यागकर आपने जो इस बीचमें त्याग-पत्रपर दस्तखत तक कर-कराके सब काम तय कर रखा है, इसकी खबर तो मुझे आपने जरा भी नहीं लगने दी?

षोड़शी—मैं अपनी बहुत-सी बातें आपसे नहीं कह पाई हूँ मगर एक दिन शायद आप सभी कुछ जान जायेंगे। संसारमें सिर्फ एक ही आदमी ऐसे हैं जिनसे मैंने सभी बातें कह दी हैं मेरे फकीर साहब।

निर्मल—ये सलाहें शायद उन्हींने दी होंगी?

षोड़शी—नहीं, वे अभीतक इस बारेमें कुछ नहीं जानते। और यह, जिसे आप त्यागपत्र कह रहे हैं, मेरी कुछ दिन पहलेकी रचना है। जिन्होंने इस काममें मुझे प्रवृत्ति दी है, सिर्फ उन्हींका नाम मैं संसारमें सबसे छिपाये रक्खूँगी।

जीवानन्द—मालूम होता है, जैसे घर बुलाकर मेरे साथ एक बड़ा भारी, मजाक कर रही हो, षोड़शी। इसपर विश्वास करना तो मेरे लिए उस 'मॉर-फिया' खानेसे भी कठिन मालूम हो रहा है।

निर्मल—(हँसकर जीवानन्दकी तरफ देखता हुआ) आप तो सिर्फ कुछ कदम ही पैदल आकर यह तमाशा देख रहे हैं, मगर मुझे काम-काज, घर-द्वार, सब कुछ छोड़के यह तमाशा देखना पड़ रहा है। और यह अगर सच हो तो आप जो चाहते थे, कमसे कम वह पा गये; पर मेरे भाग्यमें तो सोलहों आने नुकसान ही नुकसान है। (षोड़शीसे) सचमुच, यह सब आपका मज़ाक तो नहीं है?

षोड़शी—नहीं निर्मल बाबू। मेरी और मेरी माकी बदनामीसे सारा देशका देश छा गया है, सो यह क्या मेरे लिए हँसी मज़ाक़का समय है? मैं सचमुच ही छुट्टी ले रही हूँ।

निर्मल—तो बहुत ही दुःखमें पड़कर आपको यह काम करना पड़ा। मैं आपको शायद बचा भी सकता; मगर, क्यों आपने वैसा नहीं करने दिया, मैं समझ गया। जायदाद बच सकती थी, पर उससे बदनामीकी लहर और भी जोरोंसे बढ़ जाती। उसे रोकनेकी ताकत मुझमें नहीं थी।

[कनखियोंसे जीवानन्दकी ओर देखता है]

निर्मल—तो फिर अब आपने क्या करनेका निश्चय किया है?

षोड़शी—सो आपको मैं पीछे जताऊँगी।

निर्मल—कहाँ रहेंगीं ?

षोड़शी— इसकी खबर भी मैं आपको पीछे दूँगी।

निर्मल—(अपनी हाथ-घड़ी देखकर) दस बज गये, रात ज्यादा हो गई। अच्छा तो, जाता हूँ। मेरी अब शायद कोई जरूरत न होगी ?

षोड़शी—इतनी बड़ी हिमाकतकी बात भला कैसे कह सकती हूँ निर्मल बाबू ? पर हाँ, मन्दिरके विषयमें शायद अब मुझे आपको तकलीफ देनेका काम न पड़ेगा।

निर्मल—हम लोगोंको जल्दी भूल न जायँगी, इतनी उम्मीद तो कर सकता हूँ ?

षोड़शी—(सिर हिलाकर) नहीं, भूलूँगी नहीं।

निर्मल—हैम आपको बहुत चाहती है। अगर फुरसत मिले, तो कभी कभी एक-आध बार खबर ले लिया कीजिएगा। [प्रस्थान]

जीवानन्द—इस आदमीको ठीकसे समझ न सका।

षोड़शी—न समझनेसे भी आपका कोई नुकसान न होगा।

जीवानन्द—मेरा न हो, तुम्हारा तो हो सकता है। याद रखनेके लिए कैसी व्याकुल प्रार्थना कर गया है !

षोड़शी—सो सुन ली है। मगर मैं उनको जितना जानती हूँ वे उससे आधा भी मुझे अगर जानते तो आज इतनी बड़ी बहुलता-पूर्ण प्रार्थना उन्हें न करनी पड़ती।

जीवानन्द—अर्थात् ?

षोड़शी—अर्थात् यह जो चण्डीगढ़का भैरवी-पद फटे कपड़ेकी तरह आसानीसे छोड़कर जा रही हूँ, सो इसकी शिक्षा मुझे कहाँसे मिली, आप जानते हैं ? इन्हीं लोगोंसे। स्त्रियोंके लिए यह कितनी बड़ी व्यर्थकी चीज़ है, कितना झूठ है, सो समझी हूँ सिर्फ हैमको देखकर। मगर, इसकी हवा तकका उन्हें कभी पता न लगेगा।

जीवानन्द—फिर भी, यह पहेली पहेली ही रह गई अलका। एक बात साफ साफ पूछनेमें मुझे बड़ी शरम आ रही है; पर अगर पूछ सकता, तो क्या तुम उसका सच सच जवाब दे सकतीं ?

षोड़शी—(हँसकर) आप अगर कोई एक आश्चर्यजनक काम कर सकते, तब मैं भी वैसा ही कोई एक अद्भुत काम कर सकती या नहीं, सो तो मैं नहीं

जानती,—पर इतना मैं समझ गई हूँ कि आपको कोई आश्चर्यजनक काम करनेकी जरूरत नहीं। बदनामी सबने मिलकर उड़ाई है, इसीलिए उसे सच करके उठा लेना होगा, इसके कुछ मानी नहीं होते। मैं किसी भी बातके लिए किसीका भी आश्रय न लूँगी। मेरे पति हैं, किसी भी लोभसे मैं इस बातको भूल नहीं सकती। यही भयानक प्रश्न ही न: आपको शरममें डाल रहा था चौधरी साहब ?

जीवानन्द—तुम मुझे चौधरी साहब क्यों कहा करती हो ?

षोड़शी—तो क्या कहा करूँ ? हुजूर ?

जीवानन्द—नहीं। मेरा नाम तो है जीवानन्द बाबू।

षोड़शी—अच्छी बात है, भविष्यमें ऐसा ही होगा। मगर रात ज्यादा हुई जा रही है, आप घर नहीं जा रहे हैं, आपके आदमी सब कहाँ हैं ?

जीवानन्द—मैंने उन्हें घर रवाना कर दिया है।

षोड़शी—अकेले घर जानेमें आपको डर नहीं लगेगा ?

जीवानन्द—नहीं, मेरे पास पिस्तौल है।

षोड़शी—तो उसीको लेकर घर जाइए, मुझे बहुत काम है।

जीवानन्द—तुम्हें होगा, पर मुझे नहीं है। मैं अभी नहीं जाऊँगा।

षोड़शी—(तीव्र दृष्टिसे पर शांत स्वरमें) मैं आदमी बुलाकर आपके साथ किये देती हूँ, वे आपको घर तक पहुँचा देंगे।

जीवानन्द—(लज्जित होकर) बुलाना किसीको न होगा, मैं खुद ही चला जा रहा हूँ। पर जानेको मेरी तबीयत नहीं होती। मैं सिर्फ इसीसे कह रहा था। तुम क्या सचमुच ही चण्डीगढ़ छोड़कर चली जाओगी अलका ?

षोड़शी—(गरदन हिलाकर) हाँ।

जीवानन्द—कब जाओगी ?

षोड़शी—क्या मालूम, शायद कल ही जा सकती हूँ।

जीवानन्द—कल ? कल ही जा सकती हो ? (बिल्कुल स्तब्ध रहकर) आश्चर्य है ! आदमी अपना मन समझनेमें ही कितनी गलती करता है। मैंने यही कोशिश की है जी-जानसे, जिससे तुम यहाँसे चली जाओ,—फिर भी, तुम चली जाओगी, यह सुनते ही मेरी आँखोंके सामने सारी दुनिया ही मानों सूख गई ? तुम्हें निकाल देनेसे जो जमीन कर्जके मारे बेचनी पड़ी है उसके बारेमें कोई

गड़बड़ी न होगी,—कुछ नकद रुपये भी हाथ लगेंगे, और—और तुम्हें जो हुक्म दूँगा उसे करनेको तुम बाध्य होगी, बस इस एक ही पहलूको देखा मैंने। मगर इसका एक दूसरा पहलू भी था; अपनी इच्छासे जो तुम सब कुछ त्यागकर मेरे ही ऊपर सारा बोझा लादकर जा रही हो, सो मैं उसे ढो सकूँगा या नहीं, इस बातका मुझे स्वप्नमें भी खयाल न आया। अच्छा, अलका, ऐसा भी तो हो सकता है कि मेरी तरह तुमसे भी गलती हो रही हो,—तुम्हें भी अपने मनकी ठीक खबर न मिली हो! जवाब क्यों नहीं देतीं?

षोड़शी—जवाब ढूँढ़े मिल नहीं रहा है। सहसा आश्चर्य होता है कि यह क्या आपकी बात है!

जीवानन्द—तो, इतना तो बताओ कि वहाँ तुम्हारी गुजर कैसे होगी?

षोड़शी—यह अत्यन्त अनावश्यक कुतूहल है आपका, चौधरी साहब!

जीवानन्द—सो तो है ही, अलका, सो तो है ही। आज मैं अपना आवश्यक-अनावश्यक तुम्हें समझाऊँ किस चीजसे?

[बाहरसे पुजारीकी खाँसी और पैरोंकी आहट सुनाई देती है। पुजारी प्रवेश करता है।]

पुजारी—मा, सबके सामने मन्दिरकी चाबी मैं तारादास महाराजके हाथमें सौंप आया। राय साहब, शिरोमणिजी आदि सब लोग मौजूद थे।

षोड़शी—ठीक हुआ। तुम जरा खड़े रहो, मैं सागरके यहाँ जाऊँगी जरा।

जीवानन्द—तो फिर इन सबको भी तुम राय साहबके पास भेज देना।

षोड़शी—नहीं, सन्दूककी चाबी और किसीके हाथ देनेमें मुझे विश्वास नहीं होगा।

जीवानन्द—तो क्या विश्वास होगा सिर्फ मुझीपर?

[षोड़शी कोई उत्तर न देकर जीवानन्दके पैरोंके पास सिर झुकाकर प्रणाम करती है। फिर उठकर आश्चर्यमें डूबे हुए पुजारीसे कहती है—]

षोड़शी—चलो बेटा, अब देर मत करो।

पुजारी—चलो मा, चलो।

[पुजारी और षोड़शीके चले जानेपर अकेला जीवानन्द उस सुनसान कुटियाके आँगनमें स्तब्ध खड़ा रहता है।]

तृतीय अंक

प्रथम दृश्य

नाट्य-मन्दिर

[चण्डी-मन्दिरके प्राङ्गणमें स्थित नाट्य-मन्दिरका एक अंश। समय तीसरा पहर। शिरोमणिजी, जनार्दन राय, तथा और भी गाँवके दो-चार भले आदमी उपस्थित हैं।]

शिरोमणि—(आशीर्वादके ढँगपर दाहिना हाथ उठाकर जनार्दनके प्रति) आशीर्वाद देता हूँ दीर्घजीवी होओ भाई, संसारमें आकर बुद्धि तो तुम्हींने पाई है।

जनार्दन—(झुककर पाँव छूते हुए) आज इसी मामलेमें निर्मलको जरा फटकार सुनानी पड़ी शिरोमणिजी, मन आज कुछ अच्छा नहीं है।

शिरोमणि—अच्छा न रहनेकी बात ही है। पर यह एक तरहसे अच्छा ही हुआ, भाई साहब। अब बेटाजीको होश आ जाय कि ससुर और बड़े-बूढ़ोंके विरुद्ध चलनेसे क्या होता है। और यह तो होना ही था। सर्व-मंगलमयी चण्डीमाताकी इच्छा ठहरी!

एक भला आदमी—सब कुछ माताकी इच्छा है। नहीं तो क्या षोड़शी भैरवी बिना कुछ कहे-सुने यों ही चली जाती!

शिरोमणि—निःसन्देह। मन्दिरकी चाबी तो पुजारीके पाससे किसी तरह ले ली गई; पर असल चाबी तो, सुनता हूँ, जा पड़ी जमींदारके हाथ। बेटा पूरा शराबी है। देखना भाई साहब, अंतमें माताके सन्दूककी सोने-चाँदीकी सब चीजें कलवारके सन्दूकमें न चली जायँ! पापकी फिर तो सीमा ही न रहेगी।

जनार्दन—इसका तो खयाल ही नहीं किया गया!

शिरोमणि—नहीं, मगर अब सहजमें दे दे तब है। दस दिन बाद शायद कह बैठेगा, 'कहाँ, सन्दूकमें तो कुछ था ही नहीं।' मगर हम लोग तो सभी जानते हैं भाई साहब, षोड़शीने और चाहे जो कुछ किया हो, माताकी सम्पत्ति नहीं चुराई—एक पाई पैसा तक नहीं।

[बहुतसे लोग इस बातको मंजूर करते हैं।]

दूसरा भला आदमी—इससे तो बल्कि वही अच्छी थी।

शिरोमणि—चाबी बहुत ही जल्दी हाथ लगनी चाहिए।

बहुतसे—हाँ, चाहिए, चाहिए, जल्दी हाथ लगनी चाहिए।

पहला भला आदमी—मैं कहता हूँ कि चलिए हम सब मिलकर जायँ जमींदार साहबके पास। कहें जाकर कि चाबी दीजिए, क्या है, क्या नहीं, सो मिलाकर देख लें जरा।

दूसरा भला आदमी – मेरी भी यही राय है।

पहला भला आदमी—दिनके तीसरे पहर,—जब हुजूर सोतेसे उठकर शराब पीने बैठे हों, मिजाज खुश हो,—ठीक उसी वक्त।

बहुतसे—ठीक है, ठीक है, यही ठीक रहेगा।

शिरोमणि—(डरते हुए) लेकिन ज्यादा शराब पिये हों, तो उस समय जाना ठीक न होगा। तुम्हारी क्या राय है जनार्दन ?

[अकस्मात् सब लोगोंमें एक चांचल्य दिखाई देता है। एक कहता है, 'खुद हुजूर आ रहे हैं जो!' दूसरे ही क्षण जीवानन्द और प्रफुल्ल प्रवेश करते हैं। जो लोग बैठे थे, स्वागतके लिए उठ खड़े होते हैं। जीवानन्द नाट्य-मन्दिरकी सीढ़ियोंपर बैठना चाहते हैं, इतनेमें सब लोग एक साथ बोल उठते हैं, 'आसन, आसन, जल्दीसे एक आसन ले आओ कोई!']

जीवानन्द—(बैठकर) आसनकी जरूरत नहीं।—देवीका मन्दिर है, यहाँ तो सभी जगह आसन बिछा है।

जनार्दन—इसमें क्या सन्देह! यह आपहीके लायक बात है।

[प्रफुल्ल सीढ़ीके एक तरफ जा बैठता है और उसके हाथमें जो अखबार है, उसीको खोलकर चुपचाप पढ़ने लगता है।]

शिरोमणि—यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी। बादल चाहते ही पानी। आज ही दोपहरको हम लोगोंने हुजूरके पास जानेका निश्चय किया था, मगर कहीं हुजूरकी नींदमें खलल न पड़े, यही सोचकर—

जीवानन्द—नहीं गये ? किन्तु हुजूर तो दिनको सोते नहीं।

शिरोमणि—किन्तु हम लोग तो सुनते हैं हुजूर—

जीवानन्द—सुनते हैं ? सो आप लोग बहुत-सी बातें सुना करते हैं जो सच

नहीं होतीं, और बहुत-सी बातें ऐसी कहा करते हैं जो झूठ होती हैं। जैसे कि मेरे सम्बन्धमें भैरवीकी बात—

[यह कहकर वक्ता हँस देते हैं किन्तु श्रोताओंका दल ठिठक कर एकबारगी संकुचित हो जाता है।]

जनार्दन—मन्दिरका झगड़ा इतनी आसानीसे निबट जायगा, इसकी मैंने आशा ही नहीं की थी। निर्मल जिस ढंगसे टेढ़े पड़ गये थे—

जीवानन्द—वे सीधे किस तरह हुए ?

शिरोमणि—(खुश होकर दर्पके साथ) सब कुछ माताकी इच्छा है हुजूर, सीधा तो होना ही पड़ेगा। पापका भार अब उनसे सहा नहीं जा रहा था।

जीवानन्द—शायद ऐसा ही हो। इसके बाद ?

शिरोमणि—मगर पाप तो दूर हो गया, अब,—कहो न जनार्दन, हुजूरको सब समझाके बताओ न।

जनार्दन—(चौंककर) मन्दिरकी चाबी तो हम लोगोंने अपने सामने ही खड़े होकर तारादास महाराजको सँभलवा दी है। उन्होंने आज सवेरे माताका द्वार भी खोला था, मगर, सन्दूककी चाबी, सुना है कि, षोड़शीने हुजूरके हाथ सौंप दी है।

जीवानन्द—सो तो दी है। जमा-खर्चका एक खाता भी दिया है।

शिरोमणि—बेटी अभी तो मौजूद है, पर कब कहाँ चल देगी कोई ठीक थोड़े ही है।

जीवानन्द—(क्षण-भर) वृद्ध शिरोमणिके मुँहकी तरफ देखकर) लेकिन इसके लिए आप लोगोंको घबराहट किस बातकी ? उसे भगा देना भी तो जरूरी है ! क्या कहते हैं रायसाहब ?

जनार्दन—दलील-दस्तावेजें, कीमती चीजें, देवीके अलंकार आदि जो कुछ हैं, सो सब गाँवके बुजुर्गोंको मालूम हैं। शिरोमणिजीका कहना है कि षोड़शीके रहते रहते ही उन सबको मिला लेना अच्छा है। शायद—

जीवानन्द—शायद नहीं हों ? यही न ? मगर न होनेसे आप लोग वसूल कैसे करेंगे ?

जनार्दन—(इसका कोई जवाब ढूँढ़े नहीं पाते हैं। अन्तमें कहते हैं—) क्या जाने,—फिर भी मालूम तो हो जायगा, हुजूर।

जीवानन्द—सो हो जायगा। पर सिर्फ मालूम हो जानेसे लाभ क्या ?

शिरोमणि—(एक भले आदमीसे चुपकेसे) लो, हो गया !

जनार्दन—आखिर किसी दिन तो मालूम करना ही होगा, हुजूर !

जीवानन्द—सो होगा। मगर आज तो मुझे फुरसत नहीं है, रायसाहब।

शिरोमणि—(व्यग्र होकर) हम लोगोंको फुरसत है, हुजूर। चाबी जनार्दन भाई साहबके हाथ दे देनेसे ही हम लोग सब मिलाके देख सकते हैं। हुजूरकी भी किसी तरहकी जिम्मेवारी न रहेगी;—क्या है क्या नहीं, सो उसके भागनेके पहले ही सब मालूम हो जायगा। क्या कहते हो भाई साहब ? क्या कहते हो जी तुम सब ? ठीक है या नहीं ?

[सभी इस प्रस्तावपर सम्मति देते हैं, सिर्फ नहीं देते वे जिनके हाथमें चाबी है।]

जीवानन्द—(जरा हँसकर) जल्दी क्या है शिरोमणिजी,—अगर कुछ गायब भी हो गया हो, तो उस भिखारिनसे तो कुछ मिल नहीं सकता। आज रहने दो, जिस दिन मुझे फुरसत होगी, उस दिन आप लोगोंको खबर भेज दूँगा।

[मन ही मन सब क्रुद्ध हो जाते हैं।]

जनार्दन—(उठके खड़े होकर) मगर जिम्मेवारी तो एक—

जीवानन्द—सो तो ठीक बात है, रायसाहब। जिम्मेदारी तो एक रही ही मेरे ऊपर।

[सब कोई उठके खड़े हो जाते हैं। चलते चलते जमींदारके कानोंसे दूर पहुँचकर]

शिरोमणि—(जनार्दनको मसकते हुए) देखा भाई साहब, इस शराबीका रंग-ढंग समझना ही मुश्किल है। बात क्या करता है जैसे पहेली। शराबमें चूर हो रहा है। जीयेगा नहीं ज्यादा दिन।

जनार्दन—हूँ। जिस बातका डर था सो ही हुआ मालूम पड़ता है।

शिरोमणि—अब गया सब कलवारकी दूकानमें ! छोकरी जाते वक्त अच्छे चक्करमें डाल गई !

एक भला आदमी—हुजूर तो चाबी देनेसे रहे।

शिरोमणि—अब ? अब माँगने गये तो गरदन पकड़के शराब पिलाकर ही छोड़ेगा। (बात कहते ही सारा शरीर रोमाञ्चित हो उठता है।)

[सबका प्रस्थान।]

प्रफुल्ल—(अखबारपरसे निगाह उठाकर) भइया, फिर क्यों एक नई आफत मोल ले ली ? चाबी उन लोगोंको सौंप देनेसे ही किस्सा खतम हो जाता।

जीवानन्द—होता नहीं प्रफुल्ल, हो जाता तो दे देता। पीछे कोई दुर्घटना न हो जाय, इसीसे तो उसने कल रातको मेरे हाथमें चाबी सौंपी है।

प्रफुल्ल—सन्दूकमें है क्या ?

जीवानन्द—(हँसकर) क्या है ? आज सवेरे वही तो खातेमें देख रहा था। हैं—मुहरें, रुपये, हीरे, पन्ने, मोतीके हार, मुकुट, तरह-तरहके जड़ाऊ गहने, दलील-दस्तावेज,—इसके सिवा सोने-चाँदीके बर्तन भी कम नहीं हैं। कितने दिनोंसे इकट्ठी हो रही है इस छोटेसे चण्डीगढ़की देवीकी सम्पत्ति ! इतनी सम्पत्तिकी मैंने स्वप्नमें भी कल्पना नहीं की थी। चोरी-डकैतीके डरसे भैरवियाँ शायद किसीको जानने भी न देती होंगीं।

प्रफुल्ल—(डरकर) कहते क्या हैं ! उसकी चाबी आपके पास ? इकलौता बेटा और डाइनके हाथ !

जीवानन्द—निहायत झूठ नहीं कह रहे हो भाई, इतने रुपयोंके मामलेमें तो मैं अपनेपर भी विश्वास नहीं कर सकता था। और मजा यह कि मैंने माँगा नहीं। जितना ही उसपर दबाव डाला जनार्दनको देनेके लिए, उतना ही उसने नामंजूर करके मेरे ही हाथमें जबरदस्ती चाबी दे दी।

प्रफुल्ल—इसका कारण ?

जीवानन्द—शायद उसने सोचा होगा, इस बदनामीके बाद फिर ऊपरसे अगर चोरीका कलंक भी लगे, तो उससे सहा न जायगा। इन लोगोंको वह पहचानती है।

प्रफुल्ल—मगर आपको वह नहीं पहचान सकी।

जीवानन्द—(हँस देता है, पर उस हँसीमें आनन्द नहीं) यह दोष उसका है मेरा नहीं। उसके सम्बन्धमें और चाहे जितना भी अपराध किया हो मैंने, पर अपनेको पहचानने न देनेका कसूर नहीं किया। लेकिन आश्चर्यमय है यह दुनिया और उससे भी बढ़कर आश्चर्यपूर्ण है आदमीका मन। यह किस बातसे क्या तय कर लेता है, कुछ कहा नहीं जा सकता। उसकी युक्ति क्या है जानते हो भाई साहब ? उस दिन रातको मैंने उसके हाथसे मारफिया लेकर आँखें मीचे पी लिया था न, बस, वही उसके लिए सब तर्कोंसे बड़ा तर्क—

सब विश्वासोंसे बड़ा विश्वास है। मगर उस रातको तो इसके सिवा और कोई उपाय ही न था,—उसके सिवा और था ही कौन, जिसका मुँह ताकता! इस बातको षोड़शी बिलकुल ही भूल गई है। सिर्फ एक बात उसके मनमें समाई हुई है कि जो अपने प्राण बिना किसी संशयके उसके हाथ सौंप सका है, उसपर भला कैसे अविश्वास किया जा सकता है! बस, जो कुछ था, सब उसने आँख मीचकर मेरे हाथ सौंप दिया। प्रफुल्ल, दुनियाके बड़े बड़े चालाक आदमी भी कभी कभी खतरनाक भूल कर बैठते हैं, नहीं तो दुनिया बिलकुल ही मरुभूमि हो जाती,—कहीं रसकी भाफ तक न टिकने पाती।

प्रफुल्ल—बात तो बिलकुल ठीक है भाई साहब। इस लिए, जल्दीसे खाता जला डालिए, तारादास महाराजको बुलाकर डाँट-फटकार दीजिए और जमा की हुई मुहरोंसे अगर सालोमन साहबका कर्जा चुक जाय, तो रसकी सिर्फ भाफ ही नहीं, मूसलधार बरसा भी शुरू हो सकती है।

जीवानन्द—प्रफुल्ल, इसी लिए तो मैं तुम्हें इतना पसन्द करता हूँ!

प्रफुल्ल—(हाथ जोड़कर) इस पसन्दगीको अब जरा कम करना होगा, भाई साहब। आपका रसका स्रोत कभी न निबटनेवाला बना रहे, मगर मुसाहिबी करते करते इस गुलामके गलेकी नली तक सूखके लकड़ी हो गई है,—अब जरा एक बार बाहर जाकर थोड़ी-बहुत दाल-रोटी जुटाना है। कल-परसों तक मैंने बिदा ले ली समझिए।

जीवानन्द—(हँसकर) एकबारगी ले ली? लेकिन इसे लेकर अब तक कितनी बार ले चुके?

प्रफुल्ल—कोई चार बार। (हँस देता है) भगवानने मुँह दिया था; सो बड़े आदमियोंका प्रसाद खाते-खाते ही इसके दिन बीत गये। बीच-बीचमें इससे दो-चार बड़ी बातें भी अगर न निकाल पाया, तो इसकी जात मारी जायगी। इसमें ऐसा कुछ अपराध भी नहीं है भाई साहब। बहुत दिनोंसे आप लोगोंके पानीको ऊँचा और कभी नीचा बताकर इस देहमें सिर्फ चरबी-मांस ही भरता रहा हूँ, सचमुचका खून इसमें नामको भी बाकी नहीं रक्खा। आज सोचता हूँ, एक काम करूँगा। शामकी धुँधली छायामें अपनेको छुपाकर चटसे भैरवी महाराजिनकी मुट्ठीभर पाँवकी धूल ले लूँगा। आपकी भली-बुरी चीजें ही तो आज तक पेटमें भरता रहा हूँ, इसके बिना वे हजम जो न होंगी, पेटमें लोहेकी तरह छिदेंगी!

जीवानन्द—(हँसनेकी कोशिश करके) आज तुम्हारे उल्लासमें कुछ ज्यादती हो रही है प्रफुल्ल !

प्रफुल्ल—(हाथ जोड़कर) तो ठहरिए भाई साहब, इसे खतम ही कर दूँ। मुसाहिबीकी पेन्शनके तौरपर उस दिन अपनी वसीयतमें जो पाँचेक हजार रुपया लिख रक्खा है, उसपर कृपाकर कलमकी एक लकीर खींच रखिएगा,—चण्डीके रुपये हाथ लगनेपर मुसाहिबोंकी कमी न रहेगी, लिहाजा मुझे दान करके इतने रुपयोंकी कुगत न कीजिएगा।

जीवानन्द—तो अबकी बार तुमने सचमुच छोड़ दिया !

प्रफुल्ल—आशीर्वाद दीजिए कि इतनी-सी सुमति अन्त तक बनी रहे। मगर वे जा कब रही हैं ?

जीवानन्द—मालूम नहीं।

प्रफुल्ल—कहाँ जा रही हैं वे ?

जीवानन्द—सो भी नहीं जानता।

प्रफुल्ल—जानकर भी कोई लाभ नहीं, भाई साहब। बाप रे ! औरत क्या है जैसे मर्दका बाप हो। मन्दिरमें खड़ा हुआ उस दिन बहुत देर तक देखता रहा था, मालूम हुआ, जैसे पैरसे सिर तक पत्थरसे बनी हुई है। घनकी चोटसे उसे चकनाचूर किया जा सकता है, पर आगमें गलाकर अपनी इच्छासे माफिक साँचेमें ढाल लें, यह नहीं हो सकता। हो सके तो, इस अभिसन्धिको त्याग दीजिएगा।

जीवानन्द—(व्यंगके स्वरमें) तो प्रफुल्ल, अबकी तुम जाओगे ही ?

प्रफुल्ल—बुजुर्गोंकी असीसमें जोर होगा तो मनकी कामना सिद्ध होगी क्यों नहीं ?

जीवानन्द—सो हो सकती है। अच्छा, षोड़शी सचमुच ही चली जायगी, तुम्हें मालूम होता है ?

प्रफुल्ल—होता है। क्योंकि संसारमें सभी प्रफुल्ल नहीं हैं। हाँ, खूब याद आई, भइया। आपको एक खबर सुनाना भूल ही गया था। कल रातको नदी किनारे घूम रहा था, सहसा देखा फकीर साहब जा रहे हैं। आपको जिन्होंने एक दिन अपने वटवृक्षपरसे घुग्घूका शिकार नहीं करने दिया था;—बन्दूक छीन ली थी—वही। मैंने मिलिटरी ढंगसे सलाम करके कुशल पूछा,—तबीयत

थी कि दो-चार मुख-रोचक खुशामद-उसामदकी बातें करके अगर कोई अच्छी-सी दवा-अवा निकलवा सका, तो आपके जरिए पेटेण्ट कराकर बेचके कुछ रुपये कमाऊँगा। पर हजरत हैं बड़े चालाक, उस किनारेहीसे नहीं गये। बातों ही बातोंमें मालूम हुआ कि अपनी भैरवी बेटीसे मिलने आये थे, अब वापस जा रहे हैं। भैरवी सब छोड़-छोड़कर चली जा रही है, यह उन्हींसे सुना।

जीवानन्द—शायद उन्हींके सदुपदेशसे ?

प्रफुल्ल—नहीं। बल्कि उपदेशके विरुद्ध ही जा रही है।

जीवानन्द—कहते क्या हो जी, फकीर तो सुना है उसके गुरु हैं। गुरुकी आज्ञा लंघन करके ?

प्रफुल्ल—इस मामलेमें तो यही बात है।

जीवानन्द—परन्तु इतने बड़े विरागका कारण ?

प्रफुल्ल—कारण आप हैं। मालूम नहीं, यह बात आपको सुनाना उचित होगा या नहीं, पर फकीरकी धारणा है कि आपसे वे मन ही मन बहुत डरती हैं। कहीं लड़ाई-झगड़ेके बीचसे ही आपके साथ मेल-जोल न हो जाय, इसकी उन्हें सबसे बड़ी फिकर है। नहीं तो डर उन्हें झूठे कलंकसे भी नहीं है, और न गाँवके लोगोंसे ही है।

[जीवानन्द आँखें फाड़-फाड़कर चुपचाप देखता रहता है।]

प्रफुल्ल—भइया, भगवान्‌ने आपको भी कम बुद्धि नहीं दी है, किन्तु सर्वस्व समर्पण करके कल उन्होंने बड़ी भारी भूल की या हाथ फैलाकर ले लेनेमें आपने मारात्मक गल्ती की, इसकी मीमांसा आज बाकी रह गई। यदि जीता रहा तो आशा है एक दिन देख पाऊँगा।

[जीवानन्द चुप बैठ रहता है। सहसा बेहरा शराबका गिलास लेकर भीतर चला आता है।]

जीवानन्द—ओफ्—यहाँ भी ! जा, ले जा,—जरूरत नहीं।

प्रफुल्ल—गुस्सा क्यों होते हैं भाई साहब ?—जैसी शिक्षा होगी, वैसा ही तो होगा। बल्कि, कब जरूरत होगी, सो बता दीजिए न !

[बेहरा चला जाता है।]

प्रफुल्ल—अकस्मात् अमृतसे अरुचि कैसे हो गई भइया ?

जीवानन्द—(हँसकर) अरुचि नहीं,—पर अब न पीऊँगा।

प्रफुल्ल—(हँसकर) इसे लेकर कितनी बार प्रण कर चुके भइया ?

जीवानन्द—(हँसकर) इसकी मीमांसा भी आजके लिए मुल्तवी रहने दो, प्रफुल्ल,—अगर जिन्दा रहा, तो आशा है एक दिन देख लोगे।

[बेहरा फिर प्रवेश करता है।]

बेहरा—यह पिस्तौल भूलसे टेबिलपर छोड़ आये थे।

जीवानन्द—भूलसे ही छोड़ आया था, पर उसकी भी अब जरूरत नहीं, तू ले जा।

प्रफुल्ल—पर रात बहुत हो गई, ग्यारह बज रहे हैं, घर चलिए।

जीवानन्द—नहीं, घर नहीं प्रफुल्ल, अब अकेले अँधेरेमें जरा घूमने निकलूँगा।

प्रफुल्ल—अकेले ? बिना अस्त्रके ? नहीं नहीं, सो नहीं होगा भाई साहब। अँधेरी रात है, इधर-उधर आपके दुश्मन बहुत हैं। कमसे कम अपने रोजके सहचरको साथ रखिए।

[इतना कहकर नौकरके हाथसे पिस्तौल लेकर देने लगता है।]

जीवानन्द—(पीछेको हटकर) इस जीवनमें इसे अब मैं नहीं छूनेका प्रफुल्ल। आजसे मैं ऐसे ही अकेला ही निकला करूँगा, जैसे कहीं कोई दुश्मन है ही नही मेरा। मुझसे भी किसीको कोई डर न हो; उसके बाद जो होना हो, सो होता रहे। मैं किसीसे शिकायत न करूँगा।

प्रफुल्ल—यह अचानक हो क्या गया आपको ? न हो तो पियादोंमेंसे ही किसीको बुला दूँ ?

जीवानन्द—नहीं, पियादे-सिपाही भी अब नहीं। तुम लोग घर जाओ।

प्रफुल्ल—आपकी आज्ञा न लाँघूँगा। हम लोग चले, पर आप भी ज्यादा देर न कीजिएगा—मेरा अनुरोध है।

[प्रफुल्ल और बेहराका प्रस्थान।]

[जीवानन्द धीरे धीरे नाट्य-मन्दिरके दूसरी ओर पहुँच जाता है। वहाँ एक आदमी खम्भेके सहारे बैठा हुआ मृदु कण्ठसे कुछ गा रहा है और उसके पास ही चार-पाँच आदमी चादर ओढ़े सो रहे हैं। जीवानन्द झुककर अँधेरेमें उसे देखनेकी कोशिश करता है।]

गीत

पूजा कर तेरी यदि हम सब,
आँसूकी बहाएँ धारा,
शुभंकरी क्यों नाम धर रहीं,
तुम दुखहारी मा तारा।
किन पापोंसे माता काली,
दी कलंककी स्याही पोत,
अब केवल आशा तेरी तू,
अभयदायिनी जगती जोत।

जीवानन्द—कौन हो तुम ?

पथिक—जी, मैं एक यात्री हूँ बाबू।

जीवानन्द—मैं बाबू हूँ, यह पहचाना कैसे ?

पथिक—जी, इतना भी नहीं पहचान सकता ? शरीफ आदमीके सिवा इतने उजले कपड़े और किसके होंगे बाबू ?

जीवानन्द—ओः—यह बात है ? कहाँसे आ रहे हो ? कहाँ जाओगे ? ये लोग शायद तुम्हारे साथी होंगे ?

पथिक—आ रहा हूँ मानभूम जिलेसे बाबू, जाऊँगा पुरीधाम। इनमेंसे किसीका घर है मेदिनीपुर, किसीका और कहीं,—कहाँ जायँगे, सो भी नहीं जानता।

जीवानन्द—अच्छा, कितने आदमी यहाँ रोज आया करते हैं ? जो लोग यहाँ रह जाते हैं, उन्हें दोनों वक्त खानेको मिलता है, न ?

पथिक—(लज्जित होकर) सिर्फ खानेको ही नहीं बाबू। मेरे पाँवमें कटकर घाव जैसा हो गया है, इससे भैरवी माने खुद हुकम दिया था—जब तक अच्छा न हो जाय, तब तक यहीं रहो।

जीवानन्द—तुमसे नहीं कह रहा, भाई, अच्छा तो है, तुम रहो न। जगहकी तो कोई कमी नहीं है।

पथिक—पर सुना है, भैरवी मा तो अब रही नहीं।

जीवानन्द—इतनेमें सुन भी लिया ? सो वे न रहें, पर उनका हुकम तो है ? तुम्हें जानेको कहे, किसकी मजाल है ! घर कहाँ है भाई तुम्हारा ?

पथिक—घर मेरा था बाबू, मानभूमके बंसीतट गाँवमें। गाँवमें न अनाज है, न पानी; डाक्टर-वैद्य भी नहीं हैं,—जमींदार साहब रहते हैं कलकत्ता, कभी कोई उनसे अपना दुखड़ा रो नहीं सकता। वहाँ तो सिर्फ गुमाश्ते रहते हैं रुपये वसूल करनेके लिए।

[जीवानन्द चुपचाप सिर हिलाकर उसका अनुमोदन करता है]

पथिक—लगातार दो साल तक बरसा नहीं हुई, खेतकी फसल जल-भुनकर मिट्टीमें मिल गई, इतना तक सह लिया बाबू,—लेकिन—

(कहते कहते उसे रोना आ जाता है जिससे गला रुँध जाता है।)

जीवानन्द—इससे शायद सब छोड़-छाड़कर एकदम तीर्थ-यात्राके लिए निकल पड़े ?

पथिक—(सिर हिलाकर) इसी फागुनमें स्त्री मर गई, एकके बाद एक दोनों लड़के हैज़ेमें आँखोंके सामने मर गये बाबूजी, एक बूँद दवा भी किसीको न दे सका।

[कहते कहते उच्छ्वसित शोकसे रो देता है और जीवानन्द कुड़तेकी आस्तीनसे अपने आँसू पोंछने लगते हैं।]

पथिक—मनमें कहा, अब क्यों ? टूटी-फूटी झोंपड़ी विधवा भतीजीको देकर निकल पड़ा,—बाबू, मुझसे बढ़कर दुखिया संसारमें और कोई नहीं।

जीवानन्द—अरे भाई मेरे, संसार बहुत बड़ी जगह है। इसमें कौन किस जगह कैसी हालतमें है, कुछ कहा नहीं जा सकता।

पथिक—किन्तु मेरा जैसा—

जीवानन्द—दुखिया ? मगर दुखियोंकी तो कोई अलग जात नहीं है भइया, और दुःखका भी कोई बँधा रास्ता नहीं। ऐसा होता तो सभी उससे बचकर चल सकते। भड़भड़ाकर जब सिरपर आकर पड़ता है, तभी सिर्फ आदमीको उसका पता लगता है। मेरी सब बातें तुम समझोगे नहीं भाई, मगर संसारमें सिर्फ तुम्हीं अकेले नहीं हो। कमसे कम एक साथी तो तुम्हारे बहुत ही पास खड़ा है, जिसे तुम पहचान भी नहीं सके हो। पर तुम जो माका नाम ले रहे थे—

[सहसा सागर और हरिहर तेजीके साथ प्रवेश करके मन्दिरके सामने आकर खड़े हो जाते हैं। जीवानन्द कान लगाकर उनकी बातें सुनने लगता है।]

हरिहर—हमारी माका जिसने सर्वनाश किया है, उसका सर्वनाश किये बगैर हम नहीं रह सकते।

सागर—माताकी चौखट छूकर कसम खाता हूँ चचा, फाँसीपर जाना पड़े, सो भी मंजूर है।

हरिहर—हः—हम लोगोंके लिए अब जेल! हम लोगोंके लिए अब फाँसी! माको पहले जाने तो दो,—

हरिहर और सागर—जय मा चण्डी! [दोनोंका प्रस्थान।

जीवानन्द—वास्तवमें देवी-देवताके समान सहृदय श्रोता और कोई नहीं। भले ही यह झूठा दम्भ हो, फिर भी इसकी कीमत है—फिर भी कमजोरके व्यर्थ पौरुषको कुछ गौरवका स्वाद मिलता है!

पथिक—क्या कहा बाबू?

जीवानन्द—कुछ नहीं भाई, तुम माताका नाम ले रहे थे, मैंने आकर विघ्न डाल दिया। फिर शुरू करो तुम, मैं चला। कल इसी समय शायद भेंट होगी।

पथिक—अब तो भेंट नहीं होगी बाबू, मैं पाँच दिनसे यहाँ हूँ, कल ही सवेरे चला जना होगा।

जीवानन्द—चला जाना होगा? पर अभी तो तुमने कहा कि पाँव तुम्हारा अभी तक अच्छा नहीं हुआ, तुमसे चला नहीं जाता!

पथिक—माताका मन्दिर अब हो गया राजा साहबका। हुजूरका हुकम है कि तीन दिनसे ज्यादा अब कोई न रह सकेगा।

जीवानन्द (हँसकर)—भैरवी अभी गई भी नहीं और बीचमें हुजूरका हुक्म जारी हो गया? मा चण्डीकी तकदीर अच्छी है! अच्छा, आज अतिथियोंकी सेवा कैसी हुई? क्या खाया भइया?

पथिक—जिन्हें तीन दिनसे ज्यादा नही हुए, उन सबको प्रसाद मिला।

जीवानन्द—और तुम्हें? तुम्हें तो तीन दिनसे ज्यादा हो गये हैं?

पथिक—महाराज क्या कर सकते हैं, राजा साहबका हुकम नहीं है न!

जीवानन्द—होगा। (एक लम्बी साँस लेकर) कल मैं फिर आऊँगा, मगर भाई, तुम चुपकेसे नहीं चले जा सकते।

पथिक—महाराज अगर कुछ कहें?

जीवानन्द—कहने न दो। इतना दुःख सह सके तो क्या ब्राह्मणकी एक बात नहीं सह सकोगे ? रात बहुत हो गई, अब मैं जाता हूँ, पर याद रखना।

(इतनेमें षोड़शी दीपक हाथमें लिये धीरे धीरे प्रवेश करके मन्दिरके द्वारकी तरफ जाती है, जीवानन्द पीछेसे आवाज देता है)

जीवानन्द—अलका !

षोड़शी—(चौंककर) आप ? इतनी रातमें आप यहाँ क्यों ?

जीवानन्द—क्या मालूम, ऐसे ही चला आया था। तुम जानेसे पहले देवीके दर्शन करने आई हो, न ? चलो, मैं तुम्हारे साथ चलूँ।

षोड़शी—मेरे साथ जानेमें खतरा है, सो तो आप जानते हैं ?

जीवानन्द—खतरा ? जानता हूँ। मगर मेरी तरफसे कतई नहीं। आज मैं अकेला हूँ और बिलकुल निरस्त्र। इस जीवनमें और चाहे कुछ भी क्यों न मानूँ, पर मेरा कोई शत्रु है, इस बातको अब मैं किसी भी दिन नहीं माननेका।

षोड़शी—पर क्या होगा मेरे साथ जाकर ?

जीवानन्द—कुछ नहीं। सिर्फ यही कि जब तक हो, साथ रहूँगा। उसके बाद जब समय होगा, तुम्हें गाड़ीपर बिठाकर घर चला जाऊँगा। जाते समय अब आज तुम मेरा अविश्वास न करो। मेरी आयुकी कीमत तो तुम जानती हो, शायद अब फिर कभी भेट ही न हो। मुझपर तुम कितनी तरहसे दया कर गई हो, इस बातको मैं अन्तिम दिन तक याद किया करूँगा।

षोड़शी—अच्छा आइए मेरे साथ।

[बन्द दरवाजेके सामने जाकर षोड़शी देवीको नमस्कार करती है और जीवानन्द कहता है—]

जीवानन्द—तुम्हारी मुझे बहुत जरूरत है अलका। दो दिन भी क्या तुम्हारा ठहरना नहीं हो सकता ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—एक दिन भी ?

षोड़शी—नहीं।

जीवानन्द—तो मेरे सारे अपराध यहीं खड़ी रहकर माफ कर दो।

षोड़शी—पर इसकी आपको जरूरत क्या है ?

जीवानन्द—आज मुझमें इसका जवाब देनेकी शक्ति नहीं है। अभी तो सिर्फ यही बात मेरे पूरे मनको घेरे हुए है कि किस तरह तुम्हें सिर्फ एक दिनके लिए भी पकड़के रखा जा सकता है। उफ्, जिसका अपना मन दूसरेके हाथ चला जाता है, संसारमें उससे बढ़कर असहाय-निरुपाय शायद और कोई भी नहीं।

[षोड़शी जीवानन्दके पास आकर स्तब्ध होकर चुपचाप खड़ी रहती है।]

जीवानन्द—(खड़े होकर) मुझे सबसे बड़ा दुःख यह है अलका, कि सब लोग जानेंगे कि मैंने सजा दी है, तुमने सहा है, और चुपचाप चली गई हो। इतना बड़ा झूठा कलंक मुझसे सहा कैसे जायगा? सो भी सह सकता अगर एक दिन,—सिर्फ एक ही दिन, तुम्हें अपने पास रख सकता।

षोड़शी—(पीछे हटकर) चौधरी साहब, किस लिए इतना अनुनय-विनय कर रहे हैं? आपके सिपाही-पियादोंकी देहमें जोरका तो आज भी अभाव नहीं। आप तो जानते हैं,—मैं किसीसे शिकायत-नालिश नहीं करनेकी।

जीवानन्द—(रास्ता छोड़कर) तो तुम जाओ। असम्भवके लोभसे अब तुम्हें नहीं सताऊँगा। सिपाही-पियादे सभी हैं अलका,—उनके जोरमें भी कमी नहीं हुई है। परन्तु जो स्वयं पकड़ाई नहीं दी, जोर-जबरदस्तीसे पकड़ रखकर उसका बोझ ढोनेकी ताकत अब मेरी देहमें नहीं है।

षोड़शी—(घुटने टेककर जमीनसे सिर लगाकर प्रणाम करके पाँवकी धूल सिरसे लगाते हुए) आपसे मेरा सिर्फ यही अनुरोध है,—

जीवानन्द—क्या अनुरोध है अलका?—

[बाहर बैलगाड़ी आकर खड़ी होनेकी आवाज सुनाई देती है।]

षोड़शी—कृपा करके जरा सावधान रहिएगा।

जीवानन्द—सावधान रहूँगा! क्या मालूम, सो शायद अब मुझसे न हो सकेगा। कुछ देर पहले इसी मन्दिरमें न जाने कौन दो आदमी देवीकी चौखट छूकर प्राण तक देनेकी प्रतिज्ञा कर गये हैं,—उनकी माका जिसने सर्वनाश किया है, उसका सर्वनाश बगैरे किये वे न छोड़ेंगे। ओटमें छिपकर यह सब मैंने अपने ही कानोंसे सुना है,—दो दिन पहले होता तो समझता, मैं ही शायद उनका लक्ष्य हूँ,—दुश्चिन्ताकी सीमा न रहती; मगर आज कुछ मालूम ही नहीं हुआ,—क्यों अलका? चौंक क्यों पड़ीं?

षोड़शी--(पीले फक चहरेसे) नहीं, कुछ नहीं। अब तो आपका चंडीगढ़ छोड़कर घर चला जाना ही उचित है। यहाँ आपको और कोई काम तो है नहीं ?

जीवानन्द—(अन्यमनस्क होकर) काम नहीं ?

षोड़शी—कहाँ, मुझे तो कोई नहीं दिखाई देता। यह गाँव आपका है, इसे निष्पाप करनेके लिए ही आप आये थे। मेरी जैसी असतीको निर्वासित करनेके बाद अब आपको यहाँ और क्या काम है, मैं तो नहीं जानती।

जीवानन्द—(आँखें खोलकर एकटक देखता हुआ) परंतु, तुम तो असती नहीं हो ?

[गाड़ीवानका प्रवेश]

गाड़ीवान—माजी, अभी क्या ज्यादा देर होगी ?

षोड़शी—नहीं भइया, अब ज्यादा देर नहीं है।

[गाड़ीवानका प्रस्थान]

षोड़शी—चण्डीगढ़से मगर आपको जाना ही होगा सो मैं कहे देती हूँ।

जीवानन्द—कहाँ जाऊँ बताओ ?

षोड़शी—क्यों, अपने घर।

जिवानन्द—अच्छी बात है, चला जाऊँगा।

षोड़शी—लेकिन कल ही जाना होगा।

जीवानन्द—(मुँह ऊपर करके) कल ही ? लेकिन काम जो पड़ा है। खेतों-में पानीके निकासके लिए एक पुलिया बनवानी जरूरी है। इन लोगोंकी जमीनें सब वापस कर देनी होंगी, यह तो तुम्हारा ही हुक्म है। इसके सिवा मन्दिरका ठीकसे इन्तजाम होना चाहिए,—अतिथि यात्री जो लोग आते हैं उनपर अत्याचार न हो,—यह सब बिना ठीक किये ही क्या तुम जानेको कहती हो ?

षोड़शी—(सङ्कटमें पड़कर) आपके यह सब साधु-संकल्प क्या कल सवेरे तक बने रहेंगे ? (जीवानन्द चुप रहता है) मगर मुझे वचन दीजिए कि जरूरतसे एक दिन भी ज्यादा न रहेंगे, और इन दिनोंमें भी पहलेकी तरह सावधान रहेंगे। कहिए।

जीवानन्द—(इस बातपर कुछ ध्यान न देकर) अपने किये कर्मोका फल अगर मैं भोगूँ तो उसकी शिकायत किसीसे न करूँगा, —मगर जाते समय तुमसे मेरी सिर्फ एक ही माँग है—(जेबसे एक पत्र निकालकर षोड़शीके हाथमें देता है) यह चिट्ठी फकीर साहबको दे देना।

षोड़शी—दे दूँगी। पर इस चिट्ठीको क्या मैं पढ़ नहीं सकती ?

जिवानन्द—पढ़ सकती हो, पर जरूरत नहीं। इसका जवाब देनेकी जरूरत नहीं होगी। मुझे दुःखसे बचानेके लिए मुझसे बहुत ज्यादा दुःख तुमने खुद उठाया है। नहीं तो इस तरह शायद मुझे,—पर जाने दो उन बातोंको। मेरा अन्तिम अनुरोध इसीमें लिखा है। उसे अगर मान सको तो मेरे लिए उससे ज्यादा और कोई आनन्दकी बात नहीं।

षोड़शी—तो पढ़ लूँ ?

[षोड़शी चुपचाप चिट्ठी पढ़ती है,—उसके चेहरेके भावोंमें बड़ा भारी परिवर्तन हो जाता है। जीवानन्दसे छिपाकर जल्दीसे वह अपने आँसू पोंछ डालती है।]

षोड़शी—मैं कुष्ठाश्रमकी दासी होकर जा रही हूँ; यह खबर तुम्हें कैसे मालूम हुई ?

जीवानन्द—कुष्ठाश्रमकी बात तो बहुतोंको मालूम है। और तुम्हारी बात ? आज ही देवीके द्वारके सामने खड़े होकर जो लोग प्रतिज्ञा कर गये हैं, अपने कानोंसे सुनकर भी मैं जिन्हें पहचान नहीं सका—तुमने उन्हें कैसे पहचान लिया ?

षोड़शी—तुम्हारा क्या दुनियादारीमें अब मन नहीं रहा ? सब-कुछ बाँट-चूँटकर नष्ट करके क्या तुम संन्यासी होकर निकल जाना चाहते हो ?

जीवानन्द—(सहसा उत्तेजित होकर) मैं संन्यासी हो जाऊँगा ? झूठी बात है। मैं जीना चाहता हूँ। आदमियोंके बीच आदमियोंकी तरह जीना चाहता हूँ। घर चाहता हूँ, गृहस्थी चाहता हूँ, स्त्री चाहता हूँ, सन्तान चाहता हूँ,—और मौत जिस दिन रोके भी न रुकेगी उस दिन उन सबकी आँखोंके सामनेसे ही उठ जाना चाहता हूँ। पर, यह प्रार्थना करूँ किसके आगे ?

[गाड़ीवानका प्रवेश]

गाड़ीवान—माजी, शैवालदिग्घी सात-आठ कोसका रास्ता है। अभीसे न निकल गया तो पहुँचनेमें अबेर हो जायगी।

षोड़शी—चलो बेटा, आती हूँ।

[गाड़ीवानका प्रस्थान। षोड़शी जीवानन्दको फिरसे नमस्कार करती है।]

षोड़शी—मैं जाती हूँ।

जीवानन्द—अभी! इतनी रातमें?

षोड़शी—किसान सब जानते हैं कि मैं तड़के ही रवाना होऊँगी,—उन लोगोंके आ पहुँचनेके पहले ही मुझे रवाना हो जाना चाहिए।

जीवानन्द—(अकेला अँधेरेमें खड़ा हुआ) अलका! अलका! एक दिन तुम्हारी माने मेरे ही हाथ तुम्हें सौंपा था, फिर भी मैं तुम्हें न पा सका; पर उस दिन मुझे अगर कोई तुम्हारे हाथ सौंप देता तो आज शायद तुम ऐसे अँधेरेमें मुझे इस तरह छोड़कर नहीं जा सकतीं।

[बाहरसे बैलगाड़ीके चलनेकी आवाज सुनाई देने लगती है।]

चतुर्थ अंक

प्रथम दृश्य

शान्ति-कुंज

[जमींदारका ' शान्ति-कुंज ' तीन-चार दिन हुए जलके खाक हो गया है। भयंकर अग्नि-काण्डके अनेक चिह्न अब भी मौजूद हैं। सब कुछ जल गया है, सिर्फ नौकरोंके रहनेकी दो-एक कोठरियाँ बच गई हैं। उन्हींमें जीवानन्द रहते हैं। सामनेकी खुली हुई खिड़कीसे बारुई नदीका पानी बहता दिखाई दे रहा है। प्रातःकालके समय उसी तरह आँखें फैलाए जीवानन्द चुपचाप बैठे हैं। चेहरेपर किसी तरहकी चंचलता या उत्तेजनाका कोई चिह्न नहीं दिखाई देता, सिर्फ रात-भर उत्कट बीमारीसे जो कष्ट पाया है, उसीकी एक म्लान छाया सारे शरीरपर व्याप्त हो रही है।]

[प्रफुल्लका प्रवेश]

प्रफुल्ल—अब कैसी तबीयत है भइया ?

जीवानन्द—अच्छी है।

प्रफुल्ल—बहुत दिनोंकी आदत ठहरी, दवाके तौरपर भी एक-आध आउन्स अगर—

जीवानन्द—(हँसकर) दवा तो है ही। नहीं प्रफुल्ल, मैं शराब नहीं पीऊँगा।

प्रफुल्ल—कलकी रात हम लोगोंकी कैसी घबराहटसे बीती है ! मारे दर्दके हाथ-पैर तक ठंडे हुए जा रहे थे।

जीवानन्द—इसी लिए यह गरम करनेका प्रस्ताव है ?

प्रफुल्ल—वल्लभ डाक्टरको डर है, अचानक कहीं हार्ट फेल न हो जाय।

जीवानन्द—हार्ट तो अचानक ही फेल होता है प्रफुल्ल।

प्रफुल्ल—मगर उसके लिए तो कोई—

जीवानन्द—(अपने हार्टको हाथसे दिखाकर) भइया, यह बेचारा बहुत उपद्रवोंके बाद भी समान रूपसे चल रहा है, किसी दिन फेल नहीं हुआ। अकस्मात् किसी दिन यदि यह कोई अकाज कर भी बैठे तो इसे माफ कर देना चाहिए।

प्रफुल्ल—कैसे जिद्दी आदमी हैं आप, भइया। सोचता हूँ, इतनी बड़ी जिद अबतक कहाँ छिपी हुई थी?

जीवानन्द—हाँ, खूब याद आई, तुम्हारा दाल-रोटी जुटानेके लिए निकल पड़नेका जो शुभ प्रस्ताव था, वह कहाँतक अग्रसर हुआ?

प्रफुल्ल—कुसूर हो गया, भाई साहब। आप अच्छे हो जाइए, दाल-रोटीकी फिकर उसके बाद ही करूँगा।

जीवानन्द—मेरे अच्छे होनेके बाद? खैर, मैं निश्चिन्त होता हूँ।

[तारादास और पुजारीका प्रवेश]

तारादास—मंदिरके कुछ थाली-लोटे वगैरह नहीं मिल रहे हैं।

जीवानन्द—जो नहीं मिलते, उन्हें फिरसे खरीदना होगा।

[व्यस्त होकर एककौड़ीका प्रवेश]

एककौड़ी—(जोर-जोरसे) यह काम सरदारका है। आज खबर लगी है, उसे और उसके दो साथियोंको उस दिन बहुत रात तक इधर घूमते देखा है, लोगोंने। थानेको खबर भेज दी है, पुलिस आ ही रही होगी। तमाम भूमिज वंशको अगर मैंने इस मामलेमें अण्डमान न भिजवा दिया तो मेरा नाम एककौड़ी नन्दी नहीं, और फिजूल ही मैंने इतने दिन हुजूरकी सरकारकी गुलामी की!

जीवानन्द—(जरा हँसकर) तब तो तुमको भी उनके साथ जाना पड़ेगा, एककौड़ी। जमींदारकी गुमाश्तागीरीके काममें तुमने जिन लोगोंके घर जलवाये हैं, सो तो मुझे मालूम हैं। उन लोगोंको आग लगाते हुए किसीने देखा नहीं;—सिर्फ संदेहपर अगर उन्हें सजा भुगतनी पड़े तो जाने हुए अपराधपर तुम्हें भी तो उसका हिस्सा लेना पड़ेगा?

एककौड़ी—(पहले हतबुद्धि-सा होकर, फिर सूखी हँसीके साथ) हुजूर मा-बाप हैं। हम लोग सात पीढ़ीसे हुजूरके गुलाम हैं। हुजूरके हुकमसे सिर्फ जेल ही क्यों, फाँसी जानेमें भी हम लोगोंको अहंकार है।

जीवानन्द—जो जल चुका है वह अब वापस नहीं आ सकता; परन्तु उसपर अगर पुलिसके साथ जुटकर नया बखेड़ा खड़ा करके कुछ ऊपरी रोजगारकी कोशिश करोगे, तो हुजूरकी नुकसानीकी मात्रा बहुत ज्यादा बढ़ जायगी, एककौड़ी।

पुजारी—मिस्त्री आया है हुजूरके पास फरियाद करने।

जीवानन्द—किस बातकी फरियाद ?

पुजारी—मन्दिरकी मरम्मतके काममें इत्तिफाकसे उसका विशेष नुकसान हो गया था। माने कहा था, काम खतम होनेपर उसका नुकसान पूरा कर दिया जायगा। मैं तब मौजूद था हुजूर।

जीवानन्द—तो दे क्यों नहीं दिया जाता ?

पुजारी—(तारादासकी तरफ इशारा करके) ये कहते हैं, जिसने कहा था उससे जाकर वसूल कर।

[जीवानन्द क्रुद्ध दृष्टिसे तारादासकी तरफ देखता है]

तारादास—बहुत-से रुपये—

जीवानन्द—बहुत-से रुपये ही देना महाराज।

तारादास—परन्तु, खर्चा ठीक उचित है या नहीं ?

जीवानन्द—देखो तारादास, यह सब शैतानी बुद्धि छोड़ दो तुम। षोड़शीके विषयमें उचित-अनुचितके विचारका भार तुमपर नहीं है। जो कह गईं हैं, वही करो जाकर। (पुजारीसे) मिस्त्री खड़ा है ?

पुजारी—हाँ, हुजूर !

जीवानन्द—चलो, मैं खुद चलकर सब चुकाये देता हूँ।

[जीवानन्द, प्रफुल्ल, तारादास और पुजारीका प्रस्थान। सिर्फ एककौड़ी रह जाता है। शिरोमणि और जनार्दनका प्रवेश।

जनार्दन—बाबू गये कहाँ ?

एककौड़ी—(तीखेपनसे) कौन जाने।

जनार्दन—कौन जाने क्या जी ? थानेमें खबर देनेकी बात उनसे कही थी ?

एककौड़ी—कह सकें तो आप ही कहिए न ?

जनार्दन—बात क्या है एककौड़ी ?

एककौड़ी—क्या जाने क्या बात है। न तो कुछ मिजाज ही ठीक है और न किसी बातका ही ठीक-ठिकाना है। तारादास महाराजको मारनेके लिए झपट पड़े, मुझे जेल भेज रहे थे,—

शिरोमणि—अत्यधिक मद्य-पानका फल है। हुजूर क्या अभी लौट आयेंगे मालूम होता है ?

एककौड़ी—समझे राय साहब, झूठे सन्देहपर सागर सरदारका नाम पुलिसको जताना नहीं हो सकेगा।

जनार्दन—झूठा सन्देह क्या जी? अरे, वह तो बिलकुल प्रत्यक्ष ही समझो।

शिरोमणि—हाँ, एक तरहसे प्रत्यक्ष ही कहना चाहिए।

एककौड़ी—अच्छी बात है, कहके देखिए न एक बार!

जनार्दन—कहूँगा नहीं तो क्या जी! नहीं तो क्या सारे परिवारसहित जलके खाक हो जाऊँगा? पोड़शीको अलग करनेके काममें मैं भी तो एक उद्योगी था।

शिरोमणि—मेरी ही कौन-सी बात मानी है उन लोगोंने!

जनार्दन—जो लोग इतने बड़े जमींदारके मकानमें आग लगा सकते हैं, वे कौन-सा काम नहीं कर सकते?

एककौड़ी—मैं भी यही सोचता हूँ।

जनार्दन—सोचना पीछे। अभी जल्दीसे इसका कोई इन्तजाम करो। यहाँ अगर उन लोगोंको प्रश्रय मिल गया तो हम लोगोंको घरमें बन्द करके मानकच्चू (एक प्रकारका कन्द) की तरह भूनके छोड़ेंगे।

शिरोमणि—ये नालायक गुरुकी दुहाई भी न मानेंगे। डकैत ठहरे न। हो सकता है कि ब्रह्म-हत्या ही कर बैठें। (सिहर उठते हैं)

जनार्दन—और सिर्फ मकानकी ही बात थोड़े है। मेरे कितने धानके गोले हैं, कितने पुआलके ढेर हैं, सब शुदा अगर—

शिरोमणि—देखो भाई साहब, मैं तो सोचता हूँ कि कुछ दिन शिष्योंके यहाँ घूम-फिर आऊँ।

जनार्दन—मगर मेरे तो शिष्य नहीं हैं। और हों भी तो धानके गोले, पुआलके ढेर लेकर तो शिष्योंके यहाँ जाया नहीं जा सकता!

शिरोमणि—नहीं। जानेपर भी उन सबको वापस ले आना मुश्किल है। आजकलके शिष्य-सेवकोंकी मति-गति भी कुछ और तरहकी हो गई है!

एककौड़ी—चारों तरफ कड़ा पहरा रखनेका इन्तजाम कीजिए।

जनार्दन—सो तो रख छोड़ा है, पर पहरा क्या तुम लोगोंके यहाँ भी कुछ कम था एककौड़ी?

एककौड़ी—और एक बात सुनी है? सारे भूमिज किसान कल अदालतमें जाकर नालिश कर आये हैं। सुना है, उनका रोना-धोना सुनकर हाकिम खुद आयेंगे सर-जमीन जाँच करने।

जनार्दन—कहते क्या हो जी! चण्डीगढ़में रहकर जमींदार और मेरे खिलाफ नालिश?

शिरोमणि—शिष्योंके आह्वानकी उपेक्षा करना उचित नहीं हमारे लिए जनार्दन!

एककौड़ी—देखिए हिमाकत इनकी! जिन्दगीमें ज्यादा दिन जिन्हें भर-पेट खानेको नहीं मिलता, जाड़ोंकी रातें जो लोग बैठे-बैठे बिताते हैं, मरीके दिनोंमें जो कुत्ते-बिल्लीकी तरह मरा करते हैं—

जनार्दन—और फिर फसलके वक्त मुट्ठी-भर बीजके लिए जो हमारे ही दरवाजेपर हत्या देने आते हैं—

एककौड़ी—उन नमकहराम नालायकोंके पास अदालतमें जाकर नालिश करनेके लिए रुपये कहाँसे आये? और ऐसी दुर्बुद्धि दी किसने इन लोगोंको?

जनार्दन—इस सीधी-सी बातको ये नालायक लोग नहीं समझते कि सिर्फ एक जिला-अदालत ही बस नहीं है, हाई-कोर्ट नामकी भी कोई चीज है, जहाँ जीवानन्द चौधरी और जनार्दन रायको लाँघकर सागर सरदार नहीं पहुँच सकता।

एककौड़ी—जरूर। वहाँ तो जिसका रुपया उसका मुकद्दमा। आपके पास रुपया है, सामर्थ्य है, जमाई बैरिस्टर है, कितने वकील-मुख्तार हैं—नालिश अगर कर ही दें, तो आपको फिकर किस बातकी?

जनार्दन—(चिन्तित भावसे) नहीं एककौड़ी, सिर्फ जमीन बेचनेहीकी तो बात नहीं, (इशारा करके) और भी जो सब काम किये गये हैं, फौजदारी कानूनकी किताबके पन्नोंमें उसकी फलश्रुति तो सहज साधारण नहीं मालूम देती!

एककौड़ी—सो जानता हूँ। मगर ये नीच किसान हाकिमके पास कहीं प्रश्रय पा गये तो?

जनार्दन—कहा नहीं जा सकता,—यही बात तुम अपने मालिकसे कहना। अब मैं चला।

एककौड़ी—अच्छी बात है। इस बीचमें मैं भी अपना एक काम पूरा कर रक्खूँ।

(शिरोमणि, एककौड़ी और जनार्दनका प्रस्थान)

[बात करते हुए जीवानन्द और प्रफुल्लका प्रवेश ।]

जीवानन्द—नहीं प्रफुल्ल, ऐसा नहीं हो सकता। खेतकी पानी-निकासीके लिए पुल बनानेको अगर नायबकी तहवीलमें रुपये नहीं हैं, तो यहाँके मकानकी मरम्मतका काम भी बन्द रहने दो।

प्रफुल्ल—अच्छी बात है, रहने दीजिए। पर आप देश लौट चलिए।

जीवानन्द—नहीं।

प्रफुल्ल—नहीं कैसे? इस घरमें आप रह कैसे सकेंगे?

जीवानन्द—जैसे अभी हूँ। यह बर्दाश्त हो जायगा। आदमीको बहुत कुछ बर्दाश्त हो जाता है, प्रफुल्ल।

प्रफुल्ल—नहीं बर्दाश्त होता भइया, उसकी भी हद है। आपका स्वास्थ्य अचानक ही बेहद टूट गया है। वर्षा सामने है। इस टूटे-फूटे मन्दिरमें क्या यह आपकी टूटी हुई देह झोंका बर्दाश्त कर सकती है? माफ कीजिए, आप घर चलिए।

जीवानन्द—(हँसकर) इस टूटे हुए शरीरके शरीरत्वकी आलोचना फिर किसी दिन की जायगी भाई,—अभी तुम नायबको चिट्ठी लिख दो कि ये रुपये मुझे चाहिए ही। रिआया सालों-साल बराबर रुपये जुटाती आ रही है, और मर रही है। अब उसकी मौत रोकनेमें अगर जमींदार मरता है, तो भले ही मर जाय।

[तेजीसे जनार्दनका प्रवेश]

जनार्दन—हुजूरने क्या खुद,—स्वयं हुकम देकर मेरा—

जीवानन्द—कैसा हुकम राय साहब?

जनार्दन—मेरे तालाबके किनारेवाली जगहका बाड़ा तुड़वाकर उसे मन्दिरकी जमीनके साथ मिला दिया है?

जीवानन्द—कौन-सी जगहके लिए कह रहे हैं? जहाँ बीसेक वर्ष पहले मन्दिरकी गोशाला थी?

जनार्दन—मैं तो नहीं जानता वहाँ कब—

जीवानन्द—बहुत दिन हो गये हैं न, इसीसे। शायद बहुत-से कामोंकी झंझटोंमें आप भूल गये हैं।

जनार्दन—(दुःसह क्रोधको दमन करते हुए) मगर यह सब करनेके पहले, हुजूर मेरे पास जरा खबर तो भिजवा सकते थे!

जीवानन्द—जानता था कि खबर तो पहुँच ही जायगी, दो घड़ी पहले या पीछे। कुछ खयाल न कीजिएगा।

जनार्दन—लेकिन पहले जता देनेसे मामले-मुकदमेकी शायद नौबत न आती।

जीवानन्द—अब भी नौबत आना उचित नहीं है, रायसाहब। भैरवियोंके हाथसे देवीकी बहुत-सी सम्पत्ति हाथ बेहाथ हो गई है। अब उस सबकी हाथ-बदली होना जरूरी है।

जनार्दन—(सूखी हँसी हँसकर) इससे बढ़कर और अच्छी बात क्या होगी हुजूर। सुनते हैं, सारा गाँवका गाँव ही किसी दिन मा चण्डीका था। लेकिन अब—

जीवानन्द—जमींदारके पेटमें चला गया है ? सो तो गया ही है। पर उसे वापस करनेमें भी कोई कोर-कसर न रक्खी जायगी रायसाहब। मन्दिरकी दलील-दस्तावेजें, नक्शे, मैप वगैरह जो कुछ हैं, सब अटर्नीके यहाँ कलकत्ते भेज दिये हैं। पर, मैं अकेला भला क्या कर सकता हूँ ? इस काममें आप लोग भी मेरी सहायता कीजिए।

जनार्दन—करेंगे क्यों नहीं हुजूर ! हम लोग हमेशासे हुजूरकी सरकारके सेवक नहीं तो और क्या हैं ?

[जनार्दनका प्रस्थान। जीवानन्द सकौतुक हँसते हुए उसकी तरफ दृष्टि रखकर कुछ देर तक चुपचाप खड़े रहते हैं।]

प्रफुल्ल—भाई साहब, आखिरकार क्या आप यहाँ एक लंका-काण्ड शुरू कर देंगे ?

जीवानन्द—अगर हो जाय तो वह भाग्यकी बात है प्रफुल्ल, इसके लिए तो देवताओंको एक दिन तपस्या करनी पड़ी थी।

प्रफुल्ल—देवता कर सकते हैं, लंकाके बाहर बैठकर तपस्या करनेमें पुण्य भी है, और दुश्चिन्ता भी कम है। परन्तु लंकाके भीतर वास करनेवालोंके लिए लंका-काण्ड सौभाग्यका विषय नहीं कहा जा सकता। आये हैं तभीसे गाँव-भरके लोगोंसे झगड़ा करते फिरते हैं। यह आपके लिए न तो गौरवकी बात है, और न ज़रूरी। इस बीचमें नाना प्रकारके काम तो किये जा चुके, अब शान्त होकर चलिए, घर लौट चलें।

जीवानन्द—समय होते ही चला जाऊँगा।

प्रफुल्ल—अच्छा, तभी जाइएगा। कुछ भी हो भइया, आपके जानेके समयका तो कुछ अन्दाज भी हो गया;—पर मेरे जानेका समय कब आयेगा, उसका कोई ठीक ठिकाना नजर नहीं आता।

[एककौड़ीका प्रवेश]

एककौड़ी—मिस्त्री खड़ा है। पुलका काम कहाँसे शुरू किया जायगा, जानना चाहता है।

जीवानन्द—चलो न प्रफुल्ल, एक बार खेतोंकी तरफ जाकर उनका काम देख आयें।

प्रफुल्ल—चलिए।

[जीवानन्द प्रफुल्लको साथ लेकर बाहर चले जाते हैं। दूसरी तरफसे शिरोमणि और जनार्दन राय प्रवेश करते हैं।]

जनार्दन—बाबू कहाँ गये एककौड़ी?

एककौड़ी—मिस्त्रीका काम देखने गये हैं। खेतोंके बीचमें पुलिया बनेगी।

जनार्दन—पागलकी सनक है।

शिरोमणि—मद्यपानजनित बुद्धि-विकार है।

एककौड़ी—इसी सनीचरको हाकिम सर-जमीनकी जाँचके लिए आयेंगे। पर इन नीचोंको बुद्धि और रुपये कौन दे रहा है, कुछ मालूम नहीं हो सका। बस इतना ही मालूम हो सका कि वे लोग अगर हुजूरको गवाह मानें तो हुजूर कोई बात छिपायेंगे नहीं। जाली दस्तावेज बनाने तककी बात नहीं छिपानेके।

जनार्दन—(हँसकर) मेरी उमर कितनी हुई है, बतलाओ तो एककौड़ी? चण्डीगढ़के जनार्दन रायको इस झाँसेबाजीसे चित नहीं किया जा सकता भइया, और कोई तरकीब भिड़ानी पड़ेगी। (क्षण-भर मौन रहनेके बाद) पर हाँ, इतना तो मानूँगा ही कि जरा तुम्हारे हाथमें आ पड़ा हूँ। ऐंठ-ऊँठकर कुछ ऊपरी रोजगार कर लेनेका मौका जरूर तुम्हारे हाथ लगा है। पर तो भी जितना रहे-सहे, उतना ही करो।

एककौड़ी—सच कहता हूँ आपसे राय साहब—

जनार्दन—ओ हो, सो सच तो कहते ही हो। एककौड़ी नन्दी झूठ कब कहते हैं? सो बात नहीं है भाई साहब, मेरी बहुत हुआ तो सौ बीघे ही जमीन

जायगी, पर उनकी अपनी कितनी जायगी, सो क्या तुम्हारे मालिकने खतियाकर देखा है ? नहीं देखा हो तो आँखोंमें उँगली देकर दिखा दो । उसके बाद भले ही मेरे ऊपर पेच कसना।

एककौड़ी—जगह-जमीनकी तो बात ही नहीं हो रही है, राय साहब। बात है दलील-दस्तावेजें बनाये जानेकी। पूछनेपर वे सभी बातें बता देंगे, कुछ छिपायेंगे नहीं।

जनार्दन—इसकी वजह ? जेल भेजनेकी मनसा ही तो ? मगर, अकेला जनार्दन नहीं जानेका, एककौड़ी। महारानी विक्टोरिया वे 'हुजूर' हैं, इसलिए उनपर कुछ रिआयत नहीं करनेकी,—यह बात उनसे कह देना।

एककौड़ी—(अभिमानके स्वरमें) कहना हो, तो आपही खुद कहिएगा।

जनार्दन—कहूँगा नहीं तो क्या करूँगा। अच्छी तरह कहूँगा। हाकिमके सामने कबूल-जवाब देकर साधु बनना मजाक नहीं है। (इशारा करके) हथकड़ियाँ पड़ जायँगीं।

एककौड़ी—सो आप जाने और वे जानें।

जनार्दन—और आप ? श्रीमान एककौड़ी नन्दी ? मकान जब जला था, तभी मैं समझ गया था कि भीतर कुछ दालमें काला है। पर जनार्दनको इतनी नरम मिट्टी न समझ लेना भाई साहब,—पछताओगे। निर्मलको रोक रक्खा है, वही तुम लोगोंको समझा देगा।

एककौड़ी—मेरे ऊपर झूठे ही आप गुस्सा होते हैं, रायसाहब। मैंने तो जितना जानता हूँ, उतना आपको जता भर दिया है। विश्वास न हो, तो हुजूर यहीं सामनेके खेतोंमें मौजूद हैं, जरा घूमते हुए पूछते जाइए।

जनार्दन—अवश्य जाऊँगा। शिरोमणिजी, चलिए न ?

शिरोमणि—चलिए न भाई साहब, डर किस बातका है ?

[दो कदम आगे बढ़कर सहसा लौट पड़ते हैं।]

शिरोमणि—(एककौड़ीसे) पूछता हूँ, ज्यादा शराब तो नहीं पिये हुए हैं ? नहीं तो फिर—

एककौड़ी—शराब वे नहीं पीते अब। (सहसा अपने कण्ठस्वरको संयत करके) पर अब जानेकी जरूरत नहीं, हुजूर खुद ही आ रहे हैं।

[जीवानन्द और प्रफुल्लका बहस करते हुए प्रवेश ।]

जनार्दन—(पास आकर अस्वाभाविक व्याकुलताके साथ) हुजूर, सब बातें जरा विचार कर देखें !

जीवानन्द—क्या राय साहब ?

जनार्दन—जमीन-बिक्रीके बारेमें हाकिम खुद आ रहे हैं जाँच करने । हो सकता है कि जबरदस्त मुकदमा छिड़ जाय । पर आप शायद—

जीवानन्द—अच्छा ! लेकिन और चारा ही क्या है रायसाहब ! साहब जमीन छोड़ना नहीं चाहता, उसने सस्तेमें खरीदी है । मुकदमा तो छिड़ेगा ही । लिहाजा मामला जीतनेके सिवा किसानोंके लिए दूसरा कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता ।

जनार्दन—(आकुल होकर) लेकिन हम लोगोंके लिए रास्ता ?

जीवानन्द—(क्षण-भर सोचकर) सो ठीक है, हम लोगोंका रास्ता भी खूब दुर्गम मालूम होता है ।

जनार्दन—(जान हथेली पर रखके) एककौड़ीने तब तो सच ही कहा है । लेकिन हुजूर, रास्ता सिर्फ दुर्गम ही नहीं,—जेल भी भुगतनी पड़ेगी । और हम अकेले ही नहीं हैं, आप भी बाद न पड़ेंगे ।

जीवानन्द—(जरा हँसकर) इसका भी क्या किया जा सकता है, राय-साहब ! शौकसे जब कि पौधा रोपा गया है, तब फल तो उसके खाने ही होंगे ।

जनार्दन—(चीत्कार करके) यह हम लोगोंका सत्यानाश करेंगे एककौड़ी ।

[पागलकी तरह तूफानी चालसे बाहर चला जाता है । उसके पीछे एककौड़ी भी चुपकेसे खिसक जाता है ।

[नेपथ्यमें कोलाहल]

जीवानन्द—(क्षण-भर स्तब्ध रहकर) ये कौन जा रहे हैं प्रफुल्ल ?

प्रफुल्ल—शायद आपके मिट्टी खोदनेवाले धाँगड़-मजदूरोंका झुण्ड होगा ।

जीवानन्द—एक बार बुलाना जरा, उन्हें बुलाना तो । सुनें कि आज बाँधका काम कितना हुआ ?

प्रफुल्ल—(कुछ आगे बढ़कर) ओ जी, ओ सरदार, सुनो सुनो, जरा सुन आओ ।

[स्त्री और पुरुष मजदूरोंका प्रवेश]

सरदार—काहे रे, काहेके बुलावत हैं ?

जीवानन्द—तुम लोग कहाँ जा रहे हो, बताओ तो ?

सरदार—भात खायके रे।

जीवानन्द—देखना भइया, हमारा बाँधका काम बरसासे पहले ही पूरा हो जाय।

सब कोई—(एक स्वरमें) सब हुई जावे रे, सब हुई जावे—तुहू कुछ फिकर मत कर। चल सब। [कुलियोंका प्रस्थान]

[निर्मलका प्रवेश]

जीवानन्द—(आदरके साथ) आइए, आइए निर्मल बाबू।

निर्मल—(नमस्कार करके) आपसे मुझे जरा काम है।

जीवानन्द—और किसी दिन नहीं हो सकता ?

निर्मल—नहीं,—विशेष जरूरी है।

जीवानन्द—सो ठीक है। अकाजका बोझ खींचनेके लिए जिन्हें अटका रहना पड़ता है, उनका समय नष्ट करनेसे काम नहीं चल सकता।

निर्मल—लोग अकाज किया करते हैं, तभी तो दुनियामें हम लोगोंकी जरूरत होती है चौधरी साहब !

जीवानन्द—पर काजके विषयमें सबकी धारणा एक-सी तो नहीं होती निर्मल बाबू। रायसाहबका मैं अहित नहीं चाहता और आपका उद्देश्य सफल होनेसे मैं सचमुच ही खुश हूँगा; पर, अपना कर्तव्य भी मैंने निश्चय कर लिया है। उसमें जरा भी फेरफार होना अब सम्भव नहीं।

निर्मल—यह क्या सच है कि आप सब कुछ कबूल करेंगे ?

जीवानन्द—हाँ, सच ही तो है।

निर्मल—ऐसा भी तो हो सकता है कि आपके कुबूली-जबाबसे आपहीको सिर्फ सजा हो, और सब बच जाय ?

जीवानन्द—हाँ हाँ, इसकी काफी सम्भावना है। पर इसके लिए मुझे कोई शिकायत नहीं, निर्मल बाबू। अपने कृत-कर्मका फल मैं अकेला ही भोगूँ, इतना ही काफी है। रायसाहब छुटकारा पाकर स्वस्थ शरीरसे दुनियादारी निभाते रहें, और हमारे एककौड़ी नन्दी महाशय भी अन्यत्र कहीं गुमाश्तागीरीके काममें उत्तरोत्तर उन्नति करते रहें, किसीके भी प्रति मेरा कोई आक्रोश नहीं है।

निर्मल—आत्म-रक्षाका तो सभीको अधिकार है, लिहाजा रायसाहबको भी वह करना होगा। आप खुद जमींदार हैं, आपके सामने मामले-मुकद्दमेका वर्णन करना ज्यादती होगी,—आखिर तक शायद जहरसे ही जहरका इलाज करना पड़े।

जीवानन्द—इलाज करनेवाले हकीम क्या जाल-करनेके जहरमें हत्या करनेकी व्यवस्था देंगे?

निर्मल—(गुस्सेको रोकते हुए) ऐसा भी तो हो सकता है कि किसीको कोई सजा भुगतनेकी जरूरत ही न पड़े और किसीका कुछ नुकसनान भी न हो?

जीवानन्द—(उसी वक्त राजी होकर) यह तो बड़ी अच्छी बात है, आप यदि यह कर सकें तो अच्छा ही है। पर मैंने बहुत सोचकर देखा है, ऐसा नहीं होनेका। किसान अपनी जमीन नहीं छोड़नेके। क्योंकि यह सिर्फ अन्न-वस्त्रकी ही बात नहीं, उनके सात-पीढ़ियोंसे चले आये हुए आबाद खेत ठहरे, जिनके साथ उनकी नाड़ीका भी सम्बन्ध है। ये तो उन्हें देने ही होंगे। (जरा चुप रहकर) आप अच्छी तरह जानते हैं कि दूसरा पक्ष अत्यन्त प्रबल है, उसपर ज़ोर-जुल्म नहीं चल सकता। चल सकता है सिर्फ किसानोंपर;—पर हमेशासे उन्हींपर अत्याचार होता आया है और अब मैं उसे न होने दूँगा।

निर्मल—आपकी बड़ी-भारी जमींदारी है;—इन थोड़ेसे किसानोंके लिए क्या उसमें स्थान नहीं हो सकता? कहीं न कहीं—

जीवानन्द—नहीं नहीं, और कहीं नहीं,—इसी चण्डीगढ़में होना चाहिए। यहींपर मैंने जोर-जबरदस्तीसे उस दिन उनसे बहुतसे रुपये वसूल किये हैं, और उन्हें वे रुपये कर्ज दिये हैं जनार्दन रायने। इस कर्जको मुझे चुकवाना ही होगा। इसके सिवा, एक और कितना बड़ा शूल मैंने उनकी छातीमें चुभाया है, सो सिर्फ मैं ही जानता हूँ। पर जाने दो, अप्रिय आलोचना करनेकी अब मुझमें प्रवृत्ति नहीं रही निर्मल बाबू, मैंने अपना मन स्थिर कर लिया है।

[जीवानन्दका प्रस्थान।]

[उसी तरफ देखता हुआ निर्मल अभिभूतकी तरह स्थिर खड़ा रहता है। इतनेमें फकीर साहब आ पहुँचते हैं।]

फकीर—जमाई बाबू, सलाम। बाबू कहाँ हैं?

निर्मल—(नमस्कार करके) मालूम नहीं। फकीर साहब, पोड़शीकी हम

लोगोंको बहुत ही जरूरत है। वे जहाँ कहाँ भी हों, एक बार उनसे मुझे भेंट करनी ही है। बताइए, कहाँ हैं?

फकीर—आपको बतलानेमें मुझे कोई आपत्ति नहीं, कारण, एक दिन जब कि सब कोई उनके सर्वनाशके लिए उतारू थे, तब आप ही सिर्फ उनकी रक्षाके लिए खड़े हुए थे।

निर्मल—और आज, ठीक उससे उलटा हो गया है, फकीर साहब। अब कोई भी अगर उन लोगोंको बचा सकता है तो अकेली वे ही। कहाँ हैं इस समय वे?

फकीर—शैवाल-दिग्घीके कुष्ठाश्रममें।

निर्मल—कुष्ठाश्रममें? वहाँ क्या आरामसे हैं?

फकीर—(मुसकराकर) ये लीजिए। औरतोंके विषयमें आरामसे रहनेकी खबर देवतागण भी नहीं जानते, फिर मैं तो एक संन्यासी आदमी ठहरा। पर हाँ, बेटी मेरी शान्तिसे है, इतना अनुमान कर सकता हूँ।

निर्मल—(क्षण-भर मौन रहकर) यहाँ आप कहाँ आये थे?

फकीर—जमींदार जीवानन्दकी इस चिट्ठीको पाकर जरा उन्हींसे मिलने चला आया था। यह चिट्ठी आपके लिए पढ़ना जरूरी है। लीजिए, पढ़िए।

[चिट्ठी देने लगते हैं]

निर्मल—(संकोचके साथ) जीवानन्दकी लिखी हुई है? उसे मैं नहीं छुऊँगा। जरूरत हो, तो आप ही पढ़िए।

फकीर—जरूरत है, नहीं तो कहता नहीं। चिट्ठी मुझहीको लिखी है।

[फकीर साहब धीरे-धीरे चिट्ठी पढ़ने लगते हैं और निर्मलके चेहरेका भाव संशय और आश्चर्यसे कठोर होता जाता है।]

फकीर—(चिट्ठी पढ़ते हैं)—

"फकीर साहब, षोड़शीका असली नाम अलका है। वह मेरी स्त्री है। आपके कुष्ठाश्रमका मैं कल्याण चाहता हूँ, पर कृपाकर उससे कोई नीचा काम न कराइएगा। आश्रम जहाँ खोला गया है, वह जमीन मेरी नहीं, पर उससे लगा हुआ शैवालदिग्घी गाँव मेरा है। उसका मुनाफा लगभग पाँच-छह हजार रुपया सालका है। मैं आपको जानता हूँ। परन्तु आपकी अनुपस्थितिमें कहीं अलकाको बेबस जानकर कोई उसकी मान-मर्यादामें खलल न डाले, इस डरसे

आश्रमके लिए ही वह गाँव उसे देता हूँ। आप खुद किसी दिन कानूनजीवी रह चुके हैं,—इसलिए इस दानको पक्का करनेमें जो कुछ जरूरत हो, कर लीजिएगा, उसका खर्चा मैं ही दूँगा। कागज वगैरह सब तैयार करके भेजनेपर मैं दस्तखत करके रजिस्ट्री करा दूँगा।

—जीवानन्द चौधरी।"

फकीर—(निर्मलके चेहरेका भाव ताड़कर) संसारमें आश्चर्योंका कोई ठिकाना है!

निर्मल—(दीर्घ निश्वास लेकर गरदन हिलाता हुआ) हाँ। पर यह सच है, इस बातका सबूत क्या है?

फकीर—सच न होता तो इस दानको लेनेके लिए षोड़शीको मैं किसी तरह नहीं लाता।

निर्मल—(व्यग्र कण्ठसे) लेकिन वे आई हैं क्या? कहाँ हैं?

फकीर—हैं मेरी कुटियामें, नदीके उस पार।

निर्मल—मुझे तो इसी समय उनके पास पहुँचना जरूरी है, फकीर साहब।

फकीर—चलिए। (हँसकर) लेकिन दिन छिपनेवाला है, उन्हें कहीं फिर आपका हाथ पकड़कर घर तक न पहुँचाना पड़े!

[दोनोंका प्रस्थान]

[सहसा नेपथ्यसे कुछ आदमियोंके सतर्क दबे हुए कोलाहलमेंसे प्रफुल्लकी आवाज साफ सुनाई देती है "सावधानीसे! सावधानीसे! देखना कहीं धक्का न लग जाय!" और दूसरे ही क्षण वे हाथों-हाथ उठा लाकर जीवानन्दको बिस्तरपर लिटा देते हैं। उनकी आँखें मिची हुई हैं। पासमें प्रफुल्ल है।]

प्रफुल्ल—अब तबियत कैसी मालूम दे रही है भइया?

जीवानन्द—अच्छी नहीं। मैं क्या बेहोश होकर पुलियासे गिर गया था प्रफुल्ल?

प्रफुल्ल—नहीं भइया, हम लोगोंने पकड़ लिया था। कितनी ही बार मैं कह चुका हूँ कि ऐसी कमजोरीकी हालतमें ज्यादा परिश्रम आपसे न सहा जायगा, पर इसपर आपने ध्यान नहीं दिया। यह कैसा सत्यानाश कर लिया बताइए तो?

जीवानन्द—(आँखें खोलकर) सत्यानाश कहाँ हुआ प्रफुल्ल? नहीं तो

पार होनेका पाथेय है। इसके सिवा इस जीवनमें मेरे पास और पूँजी ही क्या थी?

[तेजीके साथ एककौड़ीका प्रवेश। उसके हाथमें एक काँचकी शीशी है।]

एककौड़ी—(प्रफुल्लसे) अभी तुरत हुजूरको इसे पिला दीजिए। वल्लभ डाक्टर दौड़े आ रहे हैं,—आ ही पहुँचे समझिए।

प्रफुल्ल—(शीशी हाथमें लेकर जीवानन्दके पास जाकर)भइया, यह दवा जरा पीनी होगी।

जीवानन्द—(आँखें मीचे हुए ही) पीनी होगी? दो। (दवा पीकर) कहीं मानों बड़ा-भारी दर्द हो रहा है प्रफुल्ल, मानों इस दर्दकी कोई सीमा ही नहीं। उःफ्—

प्रफुल्ल—(व्याकुल कण्ठसे) एककौड़ी, देखो न जरा, डाक्टर कितनी दूर हैं,—जाओ, जरा फिर दौड़के।

एककौड़ी—दौड़ता हुआ ही जाता हूँ बाबू—

[तेजीसे प्रस्थान।

जीवानन्द—दौड़-धूपसे अब क्या होगा प्रफुल्ल! मालूम होता है जैसे अब तुम लोग मुझे दौड़कर भी नहीं पा सकोगे।

प्रफुल्ल—(पास ही घुटने टेकके बैठकर) ऐसा तो कितनी ही बार हो चुका है, भइया। आज ऐसा क्यों सोच रहे हैं?

जीवानन्द—सोच रहा हूँ? नहीं प्रफुल्ल, अब सोच नहीं करता। (जरा हँसकर) बीमारी बहुत बार हुई है और आराम भी हो गया है, यह ठीक है। पर अबकी किसी भी तरह आराम नहीं हो सकता, यह भी वैसा ही ठीक है, प्रफुल्ल!

[एककौड़ी और वल्लभ डाक्टरका प्रवेश]

प्रफुल्ल—(उठके खड़े होकर) आइए डाक्टर साहब।

वल्लभ—हुजूरकी तबीयत खराब है,—दौड़ता हुआ आ रहा हूँ। दवा तो पिला दी है?

एककौड़ी—हाँ डाक्टर साहब, उसी वक्त पिला दी गई। दवाकी शीशी हाथमें लिये दौड़ा आया—कई जगह तो गिरते-गिरते बचा।

[वल्लभ डाक्टर पास जाकर बैठ जाता है। कुछ देर तक नाड़ी देखकर मुँह विकृत कर लेता है। फिर सिर हिलाकर प्रफुल्लको इशारेसे कहता है कि हालत अच्छी नहीं मालूम हो रही है।]

एककौड़ी—(आकुल कण्ठसे) तो क्या होगा डाक्टर साहब? कोई खूब अच्छी जोरकी दवा दीजिए,—हम लोग डबल विजिट देंगे,—आप जो चाहेंगे, सो देंगे—

प्रफुल्ल—जो चाहेंगे, सो ही देंगे? सिर्फ इतना ही? अरे वह कितना-सा होगा एककौड़ी? हम लोग उससे भी बहुत, बहुत ज्यादा देंगे। मेरे अपने प्राणोंके दाम ज्यादा नहीं हैं, पर उन्हें देना भी आज बहुत ही तुच्छ मालूम होता है, डाक्टर साहब।

वल्लभ—(ऊपरको मुँह उठाकर) सब कुछ उसके हाथमें है, नहीं तो हम लोगोंकी क्या हस्ती है! निमित्त मात्र हैं! लोक व्यर्थ ही कहा करते हैं कि चण्डीगढ़का वल्लभ डाक्टर मुरदेको जिला सकता है! दवाकी पेटी साथ ही लेता आया हूँ, इसमें गलती मुझसे नहीं होती। चलिए, नन्दी साहब, जल्दीसे एक मिक्श्चर बना दूँ!

[एककौड़ी और वल्लभका प्रस्थान।]

जीवानन्द—आँखें मीचे पड़े-पड़े कितने क्या क्या खयाल आ रहे थे मनमें प्रफुल्ल! मालूम होता था, अजीब है यह दुनिया! नहीं तो मेरे लिए आँसू बहानेको तुम्हें मैं कैसे पाता?

प्रफुल्ल—आप तो जानते हैं—

जीवानन्द—जानता क्यों नहीं प्रफुल्ल! पर एककौड़ी इसे क्या जाने! वह समझता है, उसीकी तरह तुम भी सिर्फ एक कर्मचारी हो, एक पाजी जमींदारके वैसे ही खोटे साथी हो। कितना किया है तुमने मेरे लिए चुपचाप और कितना सहते रहे हो, बाहरके आदमी इसको क्या जानें? बीच-बीचमें जब असह्य हो उठा है, तब दो गस्सा दाल-रोटीके जुटानेका बहाना करके छोड़ जानेका भी तुमने इरादा किया है, पर मैंने जाने नहीं दिया। आज सोचता हूँ,—अच्छा ही किया। सचमुच ही अगर छोड़कर चले जाते प्रफुल्ल, तो आजका दुःख रखनेको जगह कहाँ मिलती?

प्रफुल्ल—भैया—

जीवानन्द—जरा कागज-कलम लाओ न प्रफुल्ल, अपने भइयाका स्नेह-दान—

प्रफुल्ल—(पाँवोंतले घुटने टेककर) स्नेह आपका बहुत मिला है भइया, सिर्फ वही मेरी पूँजी होकर बनी रहे। आप सिर्फ यही आशीर्वाद दीजिए कि अपने परिश्रमसे जो कुछ पाऊँ, इस जीवनमें उससे ज्जादाके लिए मैं लोभ न करूँ।

जीवानन्द—(क्षण-भर निस्तब्ध रहकर) अच्छी बात है, ऐसा ही हो प्रफुल्ल। दान करके तुम्हें मैं छोटा न कर जाऊँगा। मगर लोभी तो तुम किसी दिन भी न थे।

[वल्लभ डाक्टर चुपचाप दबे पाँव भीतर आता है और दवाका पात्र प्रफुल्लके हाथमें थमाकर उसी तरह दबे पाँव वापस चला जाता है।]

प्रफुल्ल—भइया, इस दवाको पी लीजिए।

[प्रफुल्ल पास आकर जीवानन्दके मुँहमें दवा उड़ेल देता है और अपनी धोतीके छोरसे उनके ओठ पोंछ देता है।]

जीवानन्द—कैसा भयानक अँधेरा है प्रफुल्ल! कितनी रात हो गई?

प्रफुल्ल—रात तो अभी नहीं हुई, भइया।

जीवानन्द—नहीं हुई? तो फिर मेरी आँखोंके आगे यह घोर अन्धकार काहेका है प्रफुल्ल?

प्रफुल्ल—अँधेरा तो नहीं है, भइया। अभी तो सूरज भी नहीं डूबा।

जीवानन्द—नहीं डूबा? सूरज डूबा नहीं? तो खोल दो, खोल दो, मेरे सामनेका जंगला खोल दो, प्रफुल्ल, एक बार देख लूँ उन्हें। जानेके पहले अपना अन्तिम नमस्कार जता जाऊँ उन्हें।

[प्रफुल्ल सामनेका वातायन खोल देता है और पास जाकर जीवानन्दके इशारेके अनुसार सावधानीसे उनका सिराना ऊँचा कर देता है। सामने वारुई नदीकी क्षीणा जल-धारा मन्द गतिसे बह रही है। उसपार सूर्य अस्तोन्मुख हो रहा है। दूरीपर नीला जंगल आरक्त आभासे रंजित है। नदी तटकी धूसर वालुका-राशि उज्ज्वल हो उठी है।]

जीवानन्द—(आँखें खोलकर काँपते हुए हाथोंको जोड़कर सिरसे लगाकर कुछ देर तक स्तब्ध रहनेके बाद) विश्वदेव! कौन कहता है तुम अपरिचित हो?

तुम चिर-रहस्यसे ढँके हुए हो ? जन्म-जन्मान्तरके सहस्र परिचय आज जानेके दिन तुम्हारे मुँहपर स्पष्ट देख रहा हूँ। (क्षण-भर नीरव रहकर) सोचा था, शायद तुम्हें देखकर डर लगेगा,—शायद, इस जीवनकी सैकड़ों ग्लानियाँ लम्बी लम्बी काली छाया डाले आज तुम्हारे मुँहको ढक देंगी, पर सो तो होने नहीं दिया !—बन्धु, इस जीवनका मेरा शेष नमस्कार स्वीकार करो। (श्रान्तिके मारे लुढ़ककर) उःफ़—बड़ा दर्द है !

प्रफुल्ल—(व्याकुल कण्ठसे) कहाँ दर्द है भइया ?

जीवानन्द—कहाँ ? सिरमें, छातीमें, सारे शरीरमें,—प्रफुल्ल—उःफ—

[तेजीसे षोड़शीका प्रवेश। उसके पीछे एककौड़ी और वल्लभ डाक्टर हैं।]

षोड़शी—यह सब क्या कह रहे हैं प्रफुल्ल ?

(जीवानन्दके पैरों तले बैठ जाती है।)

षोड़शी—तुम्हें ले जानेके लिए तो मैं आज सब कुछ छोड़कर चली आई हूँ। पर हाय निठुर, अभिमानमें आकर तुमने यह क्या किया !

प्रफुल्ल—भइया, आँखें खोलिए, देखिए, अलका आई हैं।

जीवानन्द—अलका ! आई हो तुम ? (धीरेसे सिर हिलाकर) पर अब तो समय नहीं रहा।

षोड़शी—लेकिन, उस दिन तो तुमने कहा था कि तुम संसारमें जीना चाहते हो आदमियोंमें आदमियोंकी तरह। तुम घर चाहते हो, गृहस्थी चाहते हो, स्त्री चाहते हो, सन्तान चाहते हो—

जीवानन्द—(सिर हिलाकर) नहीं। अब झाँसा देकर और कुछ भी नहीं चाहता अलका ! हमेशा बराबर झाँसा और धोखा देकर पाते रहनेसे ही मेरा हौसला बढ़ गया था। सोचा था, ऐसा ही होता होगा। पर आज उन सबकी क़ैफ़ियत देनेका दिन आ पहुँचा। जिस सौभाग्यको इस जीवनमें उपार्जन नहीं कर सका, वही तो ऋण है,—चाहता हूँ कि अब मेरा वह बोझ न बढ़े।

(षोड़शी जीवानन्दकी छातीपर सिर रख देती है और वह धीरे धीरे अपना कमजोर हाथ षोड़शीके सिर पर रख देता है)

जीवानन्द—अभिमान था क्यों नहीं थोड़ा-बहुत। फिर भी, जानेके पहले यह पा तो लिया तुम्हें। इससे अधिक पाना दुनियादारोंके रोजमर्राके कामोंमें

शायद कभी क्षुण्ण और कभी म्लान हो जाता; मगर अब वह डर नहीं रहा। मिलनका अब विच्छेद नहीं है, अलका, यही अच्छा है।

(षोड़शी बात नहीं कर सकती, दुःसह रोदनके वेगसे उसका सम्पूर्ण वक्षःस्थल उफन उफन उठता है।)

जीवानन्द—उफ! दुनियामें अब क्या हवा नहीं रही प्रफुल्ल ?

प्रफुल्ल—तकलीफ क्या बहुत ज्यादा हो रही है भइया ? क्या डाक्टरको बुलवाऊँ।

जीवानन्द—नहीं नहीं, अब डाक्टर-वैद्यकी जरूरत नहीं, प्रफुल्ल।—सिर्फ तुम और अलका, बस ! उफ, कैसा घोर अन्धकार है ! सूर्य क्या अस्त हो गया भाई ?

प्रफुल्ल—अभी हाल ही हुआ है भइया।

जीवानन्द—इसीसे। हवा नहीं, प्रकाश नहीं, विश्वदेव ! इस जीवनका शेष दान क्या निःशेष करके ही ले लिया ! ओःफ—

षोड़शी—पतिदेव, स्वामी !

प्रफुल्ल—प्रफुल्लको क्या आज सचमुच ही छुट्टी दे दी, भइया !

समाप्त

निष्कृति

१

भवानीपुरके चटर्जी-परिवारका चूल्हा-चौका एक ही जगह है। दो सहोदर हैं गिरीश और हरीश, और एक चचेरा छोटा भाई है रमेश। पहले इनका पैतृक घर-द्वार और जमीन-जायदाद रूपनारायण नदीके किनारे हवड़ा जिलेके विष्णुपुर गाँवमें थी। तब गिरीशके पिता भवानी चटर्जीकी हालत भी अच्छी थी। परन्तु, अचानक एक समय रूपनारायणने प्रचण्ड भूखसे भवानीकी जमीन-जायदाद, तालाब बगीचा वगैरह निगलना इस तरह शुरू कर दिया कि पाँच-छै सालके अन्दर कुछ भी बाकी न छोड़ा। अन्तमें उसने सात पीढ़ियोंसे चले आये हुए घर-द्वार तकको निगलकर, इस ब्राह्मण-परिवारको बिलकुल नंगा-फकीर करके, अपनी सीमासे निकाल बाहर किया। भवानीने सपरिवार भागकर भवानीपुरमें आश्रय लिया। यह सब बहुत दिनोंकी बातें हैं। उसके बाद गिरीश और हरीश दोनों ही पढ़-लिखके वकील बन गये हैं, काफी धन-दौलत पैदा की है, मकान बनवाया है,—अर्थात् थोड़ेमें, उन्होंने जो कुछ गया था, उससे चौगुना बना लिया है। इस समय बड़े भाई गिरीशकी सालाना आमदनी है लगभग चौबीस-पचीस हजार रुपये, हरीश भी पाँच-छै हजार कमा लेता है,—सिर्फ कुछ कमा नहीं सकता रमेश। फिर भी वह बिलकुल ही कुछ न करता हो, सो बात नहीं। दो-तीन बार वह कानूनकी परीक्षा फेल कर चुका

है, और हालमें न जाने कौनसे एक व्यापारमें बड़े भाईके तीन-चार हजार रुपये पूरे करके अब घर बैठे अखबारोंकी सहायतासे देशोद्धारके कार्यमें लग गया है।

परन्तु, अब इतने दिनोंका एक चूल्हा-चौका टूटनेकी तैयारियाँ करने लगा। इसका कारण यह है कि मँझली बहू और छोटी-बहूमें अब किसी भी तरह बन नहीं रही है। हरीश अब तक कलकत्तेमें नहीं रहते थे, सपरिवार मुफस्सिलमें रह कर ही प्रैक्टिस किया करते थे। बीच-बीचमें दस-पाँच दिनके लिए उनके सपरिवार घर आनेपर यद्यपि इन दोनों नारियोंका यह थोड़ा-सा समय विशेष सद्भावके साथ न कटता था, तो भी लड़ाई-झगड़ेका ऐसा बड़ा मौका नहीं आने पाता था। परन्तु, करीब एक महीना हुआ, हरीश भी शहरमें आकर सदरमें ही वकालत कर रहे हैं और घरसे सुख-शान्ति भागनेकी तैयारी कर रही है।

फिर भी, अबकी दफा जबसे ये लोग आये हैं, तबसे अब तक इन दोनों बहुओंके मन-मुटावका मामला ऊँचे सरगमपर नहीं पहुँचा था। कारण, छोटी बहू अब तक यहाँ थी नहीं। रमेशकी स्त्री शैलजा अपने एकमात्र पुत्र पटल और सौतके लड़के कन्हाईलालको बड़ी जिठानीके जिम्मे छोड़कर अपने मरणासन्न पिताको देखने कृष्णनगर चली गई थी। परन्तु, अब बापको आराम हो गया है और इसलिए वह भी पाँच-छै दिन हुए वापस आ गई है।

यद्यपि अभी तक सास जीवित हैं, फिर भी, दर असल बड़ी बहू सिद्धेश्वरी ही घरकी मालकिन हैं। उनकी प्रकृति ठीक समझमें नहीं आती, इसीलिए, शायद मुहल्लेमें उनकी भलाई और बुराई दोनों ही कुछ अतिशयोक्तिसे की जाती है।

सिद्धेश्वरीके गरीब पिता-माता अब भी जीवित हैं। पिछले पाँच-छै वर्षोंसे लगातार कोशिश करके अबकी बार ही पूजाके समय वे अपनी लड़कीको विदा कराकर ले जा सके थे। पर सिद्धेश्वरी अपनी घर-गृहस्थी छोड़कर ज्यादा वहाँ रह न सकीं, महीने-भर बाद ही वापस चली आईं; आते वक्त कटोआसे मैलेरिया साथ ले आईं और घर आकर भी बदपरहेजी बन्द नहीं की। उसी तरह सवेरे उठकर नहाने लगीं और कुनेन-सेवनके लिए राजी न हुईं। अतएव भुगतने भी लगीं! दो-चार दिन जाते; बुखार उतर जाता, और कुछ दिन बाद फिर गिर रहतीं। नतीजा यह हो रहा था कि बहुत कमजोर हुई जा रही थीं। इसी समय शैलने मायकेसे लौटकर इलाजके बारेमें कहना-सुनना शुरू कर दिया। वह बचपनसे ही बड़ी बहूके पास रहती आई है, इसलिए, वह जितना जोर कर

सकती है, मँझली बहू या और कोई इतना नहीं कर सकता। और भी एक कारण था। मन ही मन सिद्धेश्वरी उससे डरती भी बहुत थीं। शैल बहुत ही गुस्सैल है, और ऐसा कठोर उपवास कर सकती है कि एक बार शुरू कर देनेपर तीन दिन तक किसी भी तरह उसके मुँहमें पानी तक नहीं दिया जा सकता, —यही था सिद्धेश्वरीके लिए सबसे बड़ा घबरानेका कारण। शैलकी मौसीका घर था पटलडाँगामें। अबकी बार जबसे वह कृष्णनगरसे लौटी है तबसे उनसे भेट नहीं कर सकी है। आज एकादशी है, सासके लिए निरामिष रसोई बनानेकी जरूरत नहीं थी, इसीसे, सबेरे ही सिद्धेश्वरीके मँझले लड़के हरिचरणपर दवा पिलानेका भार सौंपकर वह मौसीके यहाँ चली गई थी।

जाड़ेके दिन हैं, दो घण्टे हुए, संध्या हो गई। कल सबेरेसे ही सिद्धेश्वरीका ठीक तौरसे बुखार नहीं उतरा। आज इस समय वे रजाई ओढ़कर चुपचाप निर्जीवकी भाँति अपने उस चौड़े पलंगके एक किनारे पड़ी सो रही थीं और उसी पलंगपर तीन-चार बच्चे-कच्चे शोर-गुल मचाकर खेल रहे थे। नीचे कन्हाईलाल दीआके उजालेके सामने बैठकर भूगोल रट रहा था,—यानी किताब खोलकर मुँह बाये बच्चोंकी छेड़छाड़ देख रहा था। उधरकी ओर गल्लापर हरिचरण सिरहानेके पास बत्ती रखकर चित्त पड़ा एकाग्र चित्तसे किताब पढ़ रहा था। शायद परीक्षाके लिए पढ़ रहा था, क्योंकि इतने शोर-गुलमें भी उसका लेशमात्र धैर्य च्युत नहीं हो रहा दीखता था। जो बच्चे अबतक शोर-गुल मचाते हुए बिस्तरपर खेल रहे थे, वे सबके सब मँझले बाबू हरीशकी सन्तान हैं।

विपिनने सहसा खिसकके सिद्धेश्वरीके मुँहके ऊपर झुककर कहा, "आज मेरी दाहिनी तरफ सोनेकी पारी है न, बड़ी मा!" पर बड़ी माके जवाब देनेसे पहले ही नीचेसे कन्हाईने जोरसे कहा, "नहीं विपिन, तुम नहीं,— बड़ी माके दाहिने आज मैं सोऊँगा।"

विपिनने प्रतिवाद किया, "तुम कल तो सोये ही थे, मझला!"

"कल सोया था! अच्छा, तो आज बाईं तरफ सही!" ज्यों ही उसने यह कहा, त्यों ही पटलका छोटा-सा मस्तक रजाईके भीतरसे ऊँचा उठा, पर अबतक जी-जानसे कोशिश करके आँखोंको बंद और मस्तक ढँका रखा था। बेदखल होनेकी सम्भावनासे उसने इस झगड़ेमें शरीक होने लायक साहस नहीं किया था। उसने क्षीण कण्ठसे कहा,—"मैं अब तक चुपचाप सोया हुआ हूँ जी!"

कन्हाई बड़े भाईके अधिकारसे हुंकारके साथ बोल उठा, 'पटल, बड़े भाइयोंके साथ बहस मत करो, मासे कह दूँगा। "

पटल बेचारा और कोई रास्ता न देख अब ताईजीके गलेसे जा चिपटा और उसने रोनेके ढंगपर शिकायत की, "बड़ी मा, मैं कभीसे सो रहा हूँ जो !"

कन्हाई छोटे भाईकी गुस्ताखीपर आँखें तरेरकर 'पटल' कहकर गरजा और सहसा चुप हो गया।

ठीक इसी समय कमरेके बाहरवाले बरामदेके एक तरफसे शैलजाकी आवाज़ आई, "अरे बापरे! जीजीके घरमें क्या डाका पड़ रहा है?"

साथ ही एकदम परिवर्तन हो गया। उस बिछौनेका हरिचरण अपनी 'पाठ्य' पुस्तकको चटसे तकियेके नीचे छिपाकर अब शायद कोई 'अपाठ्य' पुस्तक खोलकर बैठ गया और उसे एकटक देखने लगा। उसकी आँखोंसे मालूम होता था कि वह अत्यन्त ध्यानसे पुस्तक पढ़नेमें मशगूल है। कन्हाईने बाईं और दाहिनी समस्या हल किये बिना ही फिलहाल चीत्कार करना शुरू कर दिया—" जो विस्तीर्ण जल-राशि..." और सबसे अधिक आश्चर्यकी बात हुई उस बच्चेके दलके सम्बन्धमें। वह जादूके खेलकी तरह न जाने कहाँ एक क्षणमें गायब हो गया,—उसका कुछ निशान भी न रहा। शैलजा कलकत्तेसे अभी तुरत ही लौटकर बड़ी जिठानीके लिए एक कटोरा गरम दूध हाथमें लिये कमरेमें आ खड़ी हुई। अब कन्हाईलालपर बड़ी आफत आई। उसकी 'विस्तीर्ण जलराशि' के गम्भीर कल्लोलके सिवा कमरेमें एकदम सन्नाटा छा गया। उधर हरिचरण इस तरह पाठ पढ़ने लगा कि यदि उसकी पीठपरसे हाथी चला जाय तो भी शायद उसका ध्यान न उचटे, क्योंकि, उसके पहले वह 'आनन्द-मठ' पढ़ रहा था। उसके भवानन्द और जीवानन्द छोटी चाचीके आकस्मिक शुभागमन-से विला गये। वह सोच रहा था कि उसके हाथकी कसरत वे देख पाई हैं या नहीं और इस बातको ठीक न जानने तक उसकी छाती धुकुर-पुकुर करती रही।

शैलजाने कन्हाईकी तरफ देखकर कहा, "ओ रे 'विस्तीर्ण जलराशि,' अब तक क्या हो रहा था?"

कन्हाईने मुँह उठाकर अकालके मारेकी-सी क्षीण आवाज़में नाकके स्वरसे कहा—मैं नहीं मा, विपिन और पटल थे। कारण, ये ही दोनों उसके बाईं और दाहिनी ओरके मामलेके प्रधान शत्रु हैं। उसने बिना किसी संकोचके इन

दो निरपराधियोंको विमाताके हाथ सौंप दिया।

शैलजाने कहा, "कोई तो देख नहीं पड़ता, लड़के सब भाग कहाँ गये?"

अब तो कन्हाईने विपुल उत्साहके साथ खड़े होकर हाथके इशारेसे बिछौना दिखाकर कहा, "कोई भागा नहीं, मा, सब इस रजाईमें दुबके पड़े हैं।"

उसकी बात सुनकर और आँख-मुँहकी भाव-भंगी देखकर शैलजाको हँसी आ गई। दूसरे उसे इसीकी आवाज़ ज्यादा सुन पड़ी थी। अब वह बड़ी जिठानीको लक्ष्य करके बोली, "जीजी, खाये डालते हैं ये तुमको! तुमसे हाथ नहीं उठाया जाता तो क्या एक बार धमकाया भी नहीं जा सकता इन्हें?—अरे ओ लड़को, निकलो, चलो मेरे साथ!"

सिद्धेश्वरी अब तक चुप थीं, अब मृदु कण्ठसे कुछ नाराज़ होकर बोलीं, "ये लोग अपने आप खेला करते हैं, मुझे ही क्यों खा डालेंगे और तेरे साथ ही क्यों चले जायँ? नहीं नहीं, मेरे सामने किसीको मारना पीटना मत। जा तू यहाँसे,—रजाईके भीतर सब बच्चे घबरा रहे हैं।"

शैलजाने जरा हँसकर कहा, "मैं क्या सिर्फ मारा-पीटा ही करती हूँ जीजी?"

"बहुत ज्यादती करती है तू शैल!" छोटी बहनकी तरह वे उसका नाम लेकर ही पुकारा करती हैं। बोलीं, "तुझे देखते ही इन लोगोंका चेहरा स्याह पड़ जाता है,—अच्छा, जा न तू बहन, सामनेसे; ये लोग बाहर निकलें।"

"मैं इन्हें ले जाऊँगी। इस तरह दिन-रात परेशान करते रहेंगे तो तुम्हें आराम न होगा। पटल सबसे शान्त है, वही सिर्फ यहाँ माके पास सोने पावेगा और सबको आजसे मेरे पास सोना होगा।" कहते हुए शैलजाने जज-मजिस्ट्रेटकी तरह अपनी राय देकर बड़ी जिठानीकी तरफ देखकर कहा, "तुम अब उठो, दूध पीओ,—क्यों रे हरी, साढ़े सात बजे तैंने अपनी माको दवा तो दिया था?"

प्रश्न सुनते ही हरिचरणका चेहरा फक पड़ गया। वह 'सन्तानों'के साथ अब तक वन-जंगलोंमें घूम फिर रहा था, देश-उद्धार कर रहा था, तुच्छ दवा और पथ्यकी बातका तो उसे खयाल ही नहीं था। उसके मुँहसे बात भी नहीं निकली। परन्तु सिद्धेश्वरी व्यग्र स्वरमें बोल उठी, 'दवा-अवा मुझसे नहीं पी जायगी शैल!'

"तुमसे नहीं कह रही जीजी, तुम चुप रहो।" कहकर हरिचरणके बिछौनेके बहुत ही पास जाकर उसने पूछा, "तुझसे पूछती हूँ, दवा दी थी?" उसके कमरेमें घुसनेके पहले ही हरिचरण सिकुड़-सिमटकर उठके बैठ गया था, अब

वह डरे हुए स्वरमें बोला, "मा पीना नहीं चाहतीं जो!"

शैलजाने धमकाकर कहा, "फिर बात काटता है। तैंने दी थी या नहीं, सो बता?"

चाचीके कठोर शासनसे लड़केका उद्धार करनेके लिए सिद्धेश्वरी उद्विग्न हो उठीं और बैठकर बोलीं, "क्यों तू इतना रातके वक्त बखेड़ा करने आ गई बता तो शैल? ओ रे ओ हरिचरण, दे जा न जल्दी, क्या दवा-अवा देनी है सो!" हरिचरण जरा हिम्मत पाकर चिन्तित भावसे पलंगके दूसरी तरफ उतर पड़ा और दराजके ऊपरसे एक शीशी और एक छोटा काँचका गिलास हाथमें लेकर माके पास आ खड़ा हुआ। वह शीशीका डॉट खोलना ही चाहता था कि शैलजाने वहींसे खड़े खड़े कहा, "गिलासमें दवा ढालकर दे देनेसे ही हो गया, क्यों रे हरी? पानी नहीं चाहिए? मुँहमें डालनेको और कुछ नहीं चाहिए? इस तरहकी बेगार टालना मैं निकालती हूँ तुम लोगोंकी, ठहरो!"

दवाकी शीशी हाथमें ले सकनेसे हरिचरणको सहसा भरोसा हो गया था कि चलो, शायद आजके लिए अलफ कट गई। पर इस 'मुँहमें डालनेको और कुछ' के प्रश्नसे वह डरा। उसने लाचारीसे इधर-उधर देखकर करुण कण्ठसे कहा "कहीं भी कुछ है नहीं जो, चाचीजी।"

"बगैर लाये 'कहींसे कुछ' क्या उड़के आ जायगा रे?"

सिद्धेश्वरीने गुस्सेमें आकर कहा, "वह कहाँ क्या पावेगा, जो देगा? ये सब क्या मर्दोंके काम हैं? तेरी तो जितनी कड़ाई है, सब इन्हीं लड़कोंपर है! नीलीसे क्यों नहीं कह जाते बना? वह मुँहजली तेरे चले जानेके बादसे इस कमरेमें झाँकी तक नहीं। एक बार आके आँखसे देखा तक नहीं कि मा मरी या रही।"

"वह क्या यहाँ थी जीजी, वह तो मेरे साथ पटलडाँगा गई थी।"

"क्यों गई थी? किस हिसाबसे तू उसे अपने साथ ले गई? दे हरिचरण, तू दवा यों ही दे दे,—मैं ऐसे ही पी लूँगी।" कहकर सिद्धेश्वरीने अनुपस्थित लड़कीपर सारा दोष उड़ेलकर दवाके लिए हाथ बढ़ा दिया।

"जरा ठहर हरी, मैं लाती हूँ", कहकर शैलजा कमरेसे बाहर चली गई।

२

हरीशकी स्त्री नयनताराने विदेशमें रहकर खूब साहबीपन सीख लिया था। अपने बच्चोंको वह विलायती पोशाकके बगैर बाहर न निकलने देती थी। आज सवेरे सिद्धेश्वरी पूजा-पाटमें बैठी थीं, लड़की नीलाम्बरी दवाका सामान लिये सामने बैठी थी, इतनेमें नयनताराने कमरेमें आकर कहा, "जीजी, दरजी अतुलका कोट बनाकर लाया है, उसे बीस रुपये देने हैं।"

सिद्धेश्वरी जप भूलकर कह उठीं, "एक जामेके दाम बीस रुपये?"

नयनताराने जरा हँसकर कहा, "ये क्या ज्यादा हैं, जीजी? मेरे अतुलके तो एक एक सूट बनवानेमें साठ-सत्तर रुपये तक लग गये हैं।"

'सूट' शब्द सिद्धेश्वरीकी समझमें नहीं आया, वे देखती ही रह गईं। नयनताराने समझाकर कहा, "कोट, पैण्ट, नेकटाई,—इन सबको हम लोग 'सूट' कहते हैं।"

सिद्धेश्वरीने क्षुब्ध भावसे लड़कीसे कहा, "नीली, अपनी चाचीको बुला ला, रुपये निकालकर दे जाय।"

नयनताराने कहा, "चाबी मुझे ही दे दो न,—मैं ही निकालकर ले आऊँ।"

नीला उठके खड़ी हो गई थी, उसीने कहा, "माँके पास चाबी कहाँसे आई, लोहेके सन्दूककी चाबी हमेशा चाचीके पास ही रहती है," और वह चली गई।

बात सुनकर नयनताराका चेहरा सुर्ख हो गया। बोली, "छोटी बहू इतने दिनोंसे थी नहीं; इसीसे मैंने समझा था कि सन्दूककी चाबी शायद तुम्हारे पास होगी जीजी।"

सिद्धेश्वरीने माला फेरना शुरू कर दिया था, इसलिए जवाब नहीं दिया।

दसेक मिनट बाद जब रुपये निकाल देनेके लिए शैलजा कमरेमें घुसी तब देखा कि अतुलके नये कोटके बारेमें वहाँ बाकायदा आलोचना हो रही है। अतुल कोट पहनकर उसकी काट-छाँट आदि समझा रहा है और उसकी मा तथा हरिचरण मुग्ध दृष्टिसे देखते हुए फैशनके विषयमें ज्ञानार्जन कर रहे हैं। अतुलने कहा, "छोटी चाची, तुम देखो तो, कैसा बढ़िया बनाया है।"

शैलजाने संक्षेपमें "अच्छा" कहकर सन्दूकमेंसे रुपये बीस निकालकर और गिनकर उसके हाथमें दे दिये।

नयनताराने उपस्थित सभी लोगोंको सुनाते हुए अपने लड़केको लक्ष्य करके कहा, "तेरे पास ट्रंक-भरे तो कपड़े हैं, तो भी तेरा पेट किसी तरह नहीं भरता।"

लड़केने अधीरताके साथ कहा, "कितनी वार कहूँ माँ, तुमसे ? आज-कलका फैशन ही ऐसी काट-छाँटका है, इस तरहका कमसे कम एक भी कोट न हो तो लोग हँसते हैं।" वह रुपये लेकर बाहर जा रहा था कि सहसा ठहर कर फिर बोला, "अपने हरी-भइया जो कोट पहनकर बाहर जाते हैं, उसे देख-कर तो मुझको भी शरम लगती है। यहाँ झूल पड़ी हुई है और वहाँ सिकुड़न पड़ी हुई है,—छिः छिः, कैसा भद्दा दीखता है !" इसके बाद फिर हँसकर हाथ-पैर मटकाकर बोला, "ठीक जैसे कोई गाव-तकिया पैरों चल रहा हो !"

लड़केकी भाव-भंगी देखकर नयनतारा खिलखिलाकर हँस पड़ी और नीला मुँह फेरकर हँसीको दबानेकी चेष्टा करने लगी।

हरिचरणने करुण दृष्टिसे छोटी चाचीके मुँहकी तरफ देखकर मारे शरमके सिर झुका लिया।

सिद्धेश्वरी नाममात्रको जप कर रही थी, लड़केका चेहरा देखकर उन्हें व्यथा हुई। गुस्सेमें आकर बोलीं, "सच ही तो है ! इन लोगोंका क्या मन नहीं चलता शैल ? दे न, इन बेचारोंको भी दो-चार कोट बनवा कर।"

अतुलने बुजुर्गोंकी तरह हाथ हिलाते हुए कहा, "मुझे रुपये दो, ताईजी, अपने दरजीसे फैशनके माफिक बनवा दूँगा,—अरे बाबा, मुझे वह धोखा देनेकी हिम्मत नहीं कर सकता।"

नयनताराने अपने पुत्रकी होशियारीके बारेमें कुछ कहना चाहा, किन्तु, इसके पहले ही शैलजा गम्भीर और दृढ़ स्वरमें बोल उठी, "तुम्हें पुर-खापन दिखानेकी जरूरत नहीं, भइया, तुम अपने चरखेमें तेल दो जाकर। इनके कपड़े सिलानेके लिए और आदमी भी हैं।" इतना कहकर वह आँच-लमें बँधा हुआ चावियोंका गुच्छा झन-से पीठपर डालकर बाहर चली गई।

नयनताराने गुस्सेमें आकर कहा, "जीजी, सुन ली छोटी बहूकी बातें ? क्यों, अतुलने ऐसी कौन-सी बेजा बात कह दी, कहो तो भला ?"

सिद्धेश्वरीने जवाब नहीं दिया। शायद इष्ट मंत्र जप रही थीं, इसीसे सुन न सकीं। पर शैलने सुन लिया। उसने दो कदम लौटकर मझली जिठानीकी ओर देखकर कहा, "छोटी बहूकी बातें जीजीने बहुत सुनी हैं,—तुमने ही नहीं

सुनी है। छोटा भाई होकर भी अतुलने इसीकी इस तरह खिल्ली उड़ाई और तुम खिलखिलाकर हँस पड़ीं—यदि वह मेरा अपने पेटका जाया लड़का होता तो उसे आज जिन्दा ही गाड़ देती!"

इतना कहकर वह अपने कामसे चली गई।

सारा कमरा तक सन्न रह गया। थोड़ी देर बाद नयनताराने एक गहरी साँस लेकर बड़ी जिठानीको लक्ष्य करके कहा, "जीजी, आज मेरे अतुलका जनम दिन है और छोटी बहू, जैसी मुँहजार आई, गाली देकर चली गई!"

सिद्धेश्वरी छोटी देवरानियोंके कलहकी सूचना पाकर डरती हुई चुपचाप इष्ट नाम जपने लगीं।

नयनताराने जवाब न पाकर फिर कहा, "तुमने खुद अगर कुछ नहीं कर दिया, तो फिर जैसा कुछ हो, हम लोगोंको ही कोई रास्ता निकाल लेना होगा।" फिर भी जब सिद्धेश्वरी कुछ नहीं बोलीं, तब नयनतारा लड़केको लेकर धीरेसे बाहर चली गई।

किन्तु दसेक मिनट बाद जैसे ही सिद्धेश्वरी जप पूरा करके उठीं कि मँझली बहू फिर आ खड़ी हुई। वह सिर्फ किवाड़की ओटमें खड़ी होकर बाट जोह रही थी।

सिद्धेश्वरीने डरते हुए सूखे मुँहसे पूछा, "क्या है मँझली बहू!"

नयनताराने कहा, "सो ही जानने आई हूँ। मैं किसीका खाती नहीं, पहनती नहीं जीजी, जो खड़ी खड़ी मुँह-मूँदे झाड़ खाऊँगी।"

सिद्धेश्वरीने उसे शान्त करनेके अभिप्रायसे विनीत भावसे कहा, "झाड़ मारेगी क्यों मँझली बहू, उसका बात करनेका ढंग ही ऐसा है। इसके सिवा, तुमसे तो उसने कुछ कहा नहीं, सिर्फ—"

"सिर्फ अतुलको ही जिन्दा गाड़ना चाहा था और मैं खिलखिलाकर हँसी हूँ! सामने मछली मत रखो जीजी,—झाड़ और कैसे मारी जाती है! पकड़के नहीं मारी, इसीसे शायद तुम्हारे मनमें नहीं बैठी, क्यों!"

सिद्धेश्वरी दंग रह गईं। आहिस्तेसे बोलीं, "यह कैसी बात है मँझली बहू, क्या उसे मैंने सिखा पढ़ा दिया है!"

मँझली बहू चाबीके लिए ही भीतर भीतर जली मरती थी। उसने उसी भावसे जवाब दिया, "सो तो तुम्हीं जानो। कोई किसीका मन खोलके नहीं दिखाता जीजी, आँखोंसे देखके,—कानोंसे सुनके ही पता लगता है। हम जो लोग तुम्हारी गिरस्तीमें आ पड़े हैं, यदि हम तुम्हारे लिए आफत-बला ही हो गये हैं

तो ठीक है, तुम खुद ही अपने मुँहसे कह देतीं तो अच्छा होता, एक दूसरे ही जनेको मेरे पीछे क्यों लगा दिया ?"

इस आरोपका उत्तर सिद्धेश्वरी ढूँढ़कर भी मुँहपर न ला सकीं, वे विह्वल-सी होकर देखती रह गईं।

मँझली बहूने और भी अधिक कठोर स्वरमें कहा, "हम लोग भी कुछ घास-फूस नहीं खाते, जीजी,—सब समझते हैं। पर, ऐसे न निकालकर दो मीठी बातोंसे बिदा कर देतीं तो देखने-सुननेमें भी अच्छा लगता, हम लोग भी प्रेमसे चले जाते। उफ् ,वे सुनेंगे तो एकदम आसमानसे गिर पड़ेंगे। इधर उधर हर किसीसे कहते फिरते हैं, हमारी भाभीजी आदमी नहीं साक्षात् देवता हैं!"

सिद्धेश्वरी रो दीं। रुँधे हुए गलेसे बोलीं, "ऐसी बदनामी तो मेरे दुश्मन भी नहीं कर सकते मँझली बहू! ये सब बातें देवरजी सुनें, इससे तो मेरा मर जाना ही अच्छा है। तुम लोग आये हो, इसकी मुझे कितनी खुशी है,—मेरे कन्हाई-पटलको ले आओ, मैं उनके सिरपर हाथ रखके—"

बात खतम नहीं हुई। शैल एक कटोरा दूध लेकर भीतर आई आर बोली, "जप हो गया क्या ?—अब जरा दूध पी लो जीजी।"

सिद्धेश्वरी रोना भूलकर चिल्ला उठीं, "चली जा मेरे सामनेसे,—दूर हो यहाँसे।"

सहसा शैलजा हक्की-बक्की होकर देखने लगी।

सिद्धश्वरीने रोते रोते कहा, "तेरे जो मुँहमें आता है, सो क्यों कह देती है सबसे ?

"किससे मैंने क्या कहा है ?"

सिद्धेश्वरीने इस प्रश्नको कानसे सुना भी नहीं, वे पहलेकी ही तरह फिर चिल्लाकर कहने लगीं, "मुझसे कह कहकर हिम्मत बढ़ गई है,—कौन तेरी बातकी धौंस सहेगा री ? सभीको तैंने 'जीजी' पा लिया है क्या ? दूर हो जा मेरे सामनेसे!"

शैलजाने स्वाभाविक भावसे कहा, "अच्छा दूध पी लो, मैं जाती हूँ। यह कटोरा मुझे अभी चाहिए।"

उसकी निरुद्विग्न बात सुनकर सिद्धेश्वरी अग्निमूर्ति हो उठीं, "नहीं, नहीं पीती, कुछ नहीं खाती-पीती मैं, तू घरसे बाहर जा, नही तो मैं जाती हूँ।

दोमेंसे एक हुए बगैर मैं पानी भी न छुऊँगी।"

शैलजाने उसी तरह स्वाभाविक स्वरमें कहा, "मैं अभी तो उस दिन आई हूँ जीजी, अब फिर नहीं जा सकूँगी। इससे तो अच्छा बल्कि यही है कि तुम ही जाकर कुछ दिन कटोआमें काट आओ,—पास ही गंगाजी हैं,—इस तरह बाहर निकलना भी हो जायगा। अच्छा, मझली जीजी, छोटी-सी बातको लेकर तुम सवेरेसे ही क्या ऊधम मचा रही हो बताओ तो? बुखार-बुखारमें जीजी ऐसे ही अधमरी हो रही हैं, उन्हें क्यों कोंच रही हो? मुझसे अगर कुसूर हुआ है, तो मुझहीसे कह देतीं,—हुआ क्या है बताओ?"

सिद्धेश्वरीने आँखें पोंछकर कहा, "आज अतुलका जन्म-दिन है, क्यों तैंने लल्लासे ऐसी बात कही!"

शैलजा हँस दी, बोली, "अच्छा, यह बात है! कुछ डर मत करना मँझली जीजी,—तुम्हारी तरह मैं भी तो मा हूँ। मेरे लिए हरी, कन्हाई, पटल जैसे हैं, अतुल भी वैसा ही है। माकी गाली कोई लगती नहीं मँझली जीजी,—अच्छा, उसे बुलाकर आशीर्वाद देती हूँ,—लो जीजी, तुम दूध पी लो, मैं कड़ाही चढ़ा आई हूँ!"

सिद्धेश्वरीके मुँहसे रुलाईके साथ साथ हँसी छूट निकली, वे बोलीं, "अच्छा तू अपनी मँझली जीजीसे भी अपराधकी माफी माँग, तैंने उसे भी बुरा-भला कहा।"

"अच्छा माँगती हूँ," कहकर शैलने उसी दम झुककर नयनताराके पाँव छूकर कहा, "अगर कुसूर बन गया है मँझली जीजी, तो माफ करो,—मैं कुसूरकी माफी चाहती हूँ।"

नयनताराने उसकी ठोढ़ी छूकर अपना हाथ चूम लिया, और फिर हँड़िया-सा मुँह बनाकर चुपचाप खड़ी हो रही।

सिद्धेश्वरीकी छातीपरसे भारी बोझ उतर गया, उन्होंने स्नेह और आनन्दसे विगलित होकर नयनताराकी तरह छोटी बहूकी ठोढ़ी छूकर मँझली बहूसे कहा, "इस पगलीकी बातपर कभी गुस्सा मत हुआ करो, मझली बहू। यहीं रहते ही देख लो न,—कितनी बिगड़ती है, [illegible] करती है; मगर पल-भर न देख पाऊँ तो छातीके भीतर जैसे कोई मोड़ने-सा लगता है।—इतना दूध तो न पिया जायगा बहन।"

"पिया जायगा,—पी लो।"

सिद्धेश्वरीने आगे बहस न करके जबरदस्ती सबका सब दूध पीकर कहा, "अभी तुरत लल्लाको बुलाकर आशीर्वाद दे शैल।"

"अभी देतीहूँ" कहकर शैलजा हँसती हुई रीता कटोरा लेकर बाहर चली गई।

३

अतुल अपनी जिन्दगीमें ऐसा लज्जित और अप्रतिभ कभी नहीं हुआ। बचपनसे ही लाड़-प्यारमें पला हुआ है, मा बाप उसकी इच्छा और रुचिके विरुद्ध कभी कुछ नहीं करते। आज सबके सामने इतने जबरदस्त अपमानने उसके सारे शरीरमें आग-सी लगा दी। वह बाहर गया और नये कोटको जमीनपर पटककर उल्लू-सा मुँह बनाकर बैठ गया।

आज हरिचरणकी सारी सहानुभूति थी अतुलके साथ। कारण, उसकी वकालत करते हुए वह लांछित हुआ था,—इसीसे वह भी उसके पास आकर मुँह भारी करके बैठ रहा। मनमें इच्छा थी कि उसे सान्त्वना दे; परन्तु सम-योपयोगी एक भी बात उसे जब ढूँढ़े न मिली, तो वह चुपचाप बैठा रहा। मगर अतुलका तो अब चुप बैठा रहना हो नहीं सकता था। कारण, अपमान ही एकमात्र इस समय उसके लिए क्षोभका विषय नहीं था, वह विदेशसे बहुत-सी फैशन,—बहुतसे कोट-पैण्ट-नेकटाई वगैरह लेकर घर आया है, नाना प्रकारसे उसने अपना आसन बहुत ऊँचा उठाया है; आज छोटी चाचीके तिरस्कारके एक धक्केसे अकस्मात् उसे टूटते-फूटते एकमेक होते देख वह उद्वेगसे चंचल हो उठा। वह हरी-भइयाको लक्ष्य करके रोषके साथ बोला, "मैं किसीकी परवाह नहीं करता जी, श्रीअतुलचन्द्र शर्मा, गुस्सा आनेपर फिर छोटी चाची आची किसीकी भी 'केयर' नहीं करते!"

हरिचरणने इधर उधर ताककर डरते डरते जवाब दिया, "मैं भी नहीं करता,—चुप, कन्हाई आ रहा है।" इतना कहकर वह इस डरसे त्रस्त होकर कि निर्बोध अतुल कहीं उसीके सामने वीरता न दिखा बैठे, उठ खड़ा हुआ।

कन्हाईने दरवाजेके बाहर खड़े होकर मुगल बादशाहोंके नकीबकी तरह जोरसे आवाज़ लगाई, "मँझले भइया, सँझले भइया, माँ बुला रही है,—जल्दी!"

हरिचरणने सफेद-फक चेहरेसे कहा, "मुझे! मैंने क्या किया है? मुझे

हरगिज नहीं,—जाओ अतुल, छोटी चाची बुला रही हैं तुमको।"

कन्हाईने प्रभुत्वके स्वरमें कहा, "दोनोंहीको, दोनोंहीको, अभी! ऐं, सँझले भइया, तुम्हारा कोट धरतीपर किसने डाल दिया?" इसके जवाबमें सँभले भइयाने सिर्फ मँझले भइयाके मुँहकी तरफ देखा और मँझले भइया सँझले और बड़े भइयाका मुँह ताकने लगे। किसीके भी मुँहसे आवाज नहीं निकली। कन्हाई जमीनपर पड़े हुए कोटको उठाकर कुर्सीके हथेलेपर रखकर चला गया।

हरिचरणने सूखे कण्ठसे कहा, "मुझे और डर ही किस बातका है? मैंने तो कुछ कहा नहीं,—तुम्हींने कहा है कि मैं छोटी चाचीकी 'केयर' नहीं करता-"

"मैंने अकेले नहीं कहा, तुमने भी कहा है—" कहता हुआ अतुल गर्वके साथ घरके भीतर चल दिया। अभिप्राय यह कि जरूरत पड़नेपर वह सच बात प्रकट कर देगा। हरिचरणका चेहरा और भी खराब हो गया। एक तो छोटी चाची क्यों बुला रही हैं सो मालूम नहीं; उसपर वेशऊर अतुल क्या कह देगा, इसका भी अन्दाजा लगाना कठिन है। एक बार सोचा, वह भी पीछेसे जा पहुँचे और सब तरहकी शिकायतोंका बाकायदा प्रतिवाद करे। परन्तु कोई भी बात उसे अपने बूतेकी होनेका विश्वास नहीं हुआ। इधर हाजिरीका वक्त भी नजदीक आ रहा है,—कन्हाई समन्स दे गया है, और अबकी जरूर वारण्ट लेकर आयेगा। हरिचरण फिलहाल आत्म-रक्षाका और कोई अच्छा उपाय न खोज पाकर लोटा हाथमें लेकर जल्दी जल्दी एक खास स्थानकी ओर चल दिया। छोटी चाचीसे घर-भरके लोग शेरकी तरह डरते हैं।

अतुलने भीतर जाकर मालूम किया कि छोटी चाची निरामिष-रसोई-घरमें हैं। वह छाती फुलाकर दरवाजेपर जा खड़ा हुआ। कारण, इस घरके और और लड़कोंकी तरह उसे इस छोटी चाचीको पहचाननेका मौका न मिला था। स्त्रियाँ भी ईस्पातकी तरह सख्त हो सकती हैं, यह उसे मालूम नहीं था। साथ ही, साधारण दुर्बलचित्त और मृदु स्वभावके आत्मीय जनोंद्वारा शुरूसे ही प्रश्रय मिलते रहनेसे मा, चाची, ताई आदि गुरुजनोंके सम्बन्धमें उसकी एक अद्भुत धारणा हो गई थी कि इन लोगोंके मुँहके सामने सिर्फ कड़ा जवाब दे सकनेसे ही काम बन जाता है। अर्थात्, अपनी इच्छा खूब जोरसे प्रकट करना चाहिए और तभी वे उसमें अपनी राय देते हैं। अन्यथा नहीं देते। जो लड़का ऐसा नहीं कर सकता, उसे हमेशा ठगाना पड़ता है। यहाँ आकर जब

उसने देखा कि हरिचरणकी पोशाक वगैरह ठीक नहीं है तब गुप्त रीतिसे यह तरकीब उसने उसे सिखा भी दी थी। फिर भी, अभी तुरत अपने बारेमें कोई भी तरकीब उसे नहीं सूझी; छोटी चाचीकी फटकार खाकर कड़ा जवाब देना तो बहुत दूरकी बात है,—किसी तरहका मामूली जवाब तक उसकी जबानपर न आया था,—हतबुद्धिकी भाँति ही वह बाहर चला आया था। इसीसे अब लौटकर वह अपने अपमानका कौड़ी कौड़ी बदला चुका देनेकी गरजसे इस तरह जान हथेलीपर रखकर दरवाजेके पास आकर खड़ा हो गया। इस जगहसे शैलजाके चेहरेका कुछ हिस्सा साफ दिखाई दे रहा था; यहाँ तक कि मुँह उठाते ही अतुलपर उनकी नजर पड़ जाती। पर रसोईमें लगी रहनेसे उन्हें न उसके पैरोंकी आहट सुनाई दी, और न मुँह उठाकर इधर उन्होंने देखा ही। मगर आज अतुलने छोटी चाचीको अच्छी तरह देख लिया। देखा क्षण-भर ही, फिर भी, उसने अनुभव किया कि यह मुँह उसकी मा जैसा नहीं है, और ताईके जैसा भी नहीं,—इस चेहरेके सामने खड़े होकर अपना अभिप्राय जोरोंसे व्यक्त करने जैसी शक्ति और किसीमें चाहे हो या न हो, पर उसके गलेमें तो नहीं है। उसकी फूली हुई छाती अपने आप सिकुड़ गई, और वह चुपचाप खड़ा रहा। उसे इतनी भी हिम्मत न हुई कि किसी तरहकी आहट करके भी छोटी चाचीकी दृष्टि इधरको आकर्षित करे।

नीला किसी कामसे इधर आ रही थी। सहसा अतुल भइयाके पैरोंकी तरफ निगाह पड़ते ही वह दाँतोंतले जीभ दबाकर ठिठकके खड़ी हो गई और वहींसे भयसे व्याकुल होकर बार बार उसे इशारा करने लगी कि यह जूते पहनकर खड़े होनेकी जगह नहीं है।

छोटी चाचीके झुके हुए चेहरेकी ओर कनखियोंसे देखकर अतुलके भीतर काँटेसे उठ खड़े हुए। एक बार सोचा कि चुपचाप वहाँसे खिसक जाय, फिर सोचा कि जूते खोलकर वहाँसे आँगनमें फेंक दे। परंतु, छोटी बहनके सामने डरनेके लक्षण प्रकट करनेमें अत्यन्त शरम-सी आने लगी। इस मनाहीको वह वास्तवमें जानता न था, और अपनी हठसे उसका उल्लंघन भी नहीं किया था; परन्तु, माता-पितासे लगातार अवारित और असंगत प्रश्रय पाते रहनेके कारण उसका अभिमान इतना ज्यादा सूक्ष्म और तीव्र हो गया था कि कोई काम कर डालनेके बाद फिर डरसे पीछे कदम रखनेमें उसका सिर कटता था। डरसे

चेहरा फक पड़ जानेपर भी, और वहाँ खड़े रहनेमें अपना सर्वनाश जानकर भी, अभिमानी दुर्योधनकी तरह वह सूच्यग्र भूमि भी न छोड़ सका।

शैलजाने मुँह उठाया। वह स्नेहके साथ मृदु हँसकर बोली," अतुल, तू आ गया? ठहर बेटा,—यह क्या रे, जूता पहने? नीचे उतर,—नीचे उतर—"

घरका और कोई लड़का ऐसी दशामें शैलजाके हाथसे यदि इतनी आसानीसे छुटकारा पा जाता तो चटसे भागकर जान बचा लेता; पर अतुल गरदन नीची किये गुम-सा खड़ा रहा।

शैलजाने उठकर कहा, " जूते पहनकर यहाँ नहीं आना चाहिए, अतुल, नीचे जा।"

अतुलने सूखे मुँहसे क्षीण स्वरमें कहा, " मैं तो चौखटके बाहर खड़ा हूँ,—यहाँ क्या दोष है?"

शैलजाने कड़ाईके साथ कहा, " दोष है, जा।"

अतुल फिर भी न डिगा; वह मानस-चक्षुओंसे देखने लगा—हरिचरण, कन्हाई, विपिन वगैरह ओटमें छुपे हुए उसकी बेइज्जतीका मजा ले रहे हैं। इसीसे बदजात घोड़ेकी तरह गरदन टेढ़ी करके बोला, " हम लोग चुँचड़ामें तो जूते पहने ही रसोईघरमें जाते हैं,—यहाँ चौखटके बाहर खड़े होनेमें कोई दोष नहीं।"

इस हिमाकतको देखकर शैलजा असह्य आश्चर्यसे स्तब्ध होकर खड़ी रही। पर उसकी आँखोंसे मानो चिनगारियाँ-सी निकलने लगीं।

ठीक इसी समय हरिचरणका बड़ा भाई मणीन्द्र डम्बल और मुद्गर माँजकर पसीनेसे लथपथ बाहर जा रहा था; शैलजाकी आँखोंकी तरफ देखकर उसने आश्चर्यके साथ पूछा, " क्या हुआ, चाचीजी?"

मारे क्रोधके शैलजाके मुँहसे स्पष्ट बात नहीं निकली। नीला खड़ी थी, उसने अतुलके पैरोंकी तरफ उँगली करके कहा, " अतुल भइया जूते पहने खड़े हैं यहाँ,—किसी तरह नीचे उतर नहीं रहे हैं।"

मणीन्द्रने जोरसे कहा, " ए, नीचे उतर।"

अतुल उसी तरह जिदके स्वरमें बोला, " यहाँ खड़े होनेमें दोष क्या है? छोटी चाचीको मैं देखे नहीं सुहाता, इसीसे सिर्फ 'जा जा' करती है।

मणीन्द्रने ऊपर उछलकर अतुलके गालपर तड़ाकसे एक प्रचण्ड तमाचा जड़ दिया और कहा, 'छोटी चाची' नहीं 'छोटी चाचीजी,'—'करती है' नहीं 'करती हैं' कहना होता है,—नीच कहींके!"

एक तो वैसे ही मणीन्द्र पहलवान ठहरा, और फिर तमाचेका वजन भी ठीक न रख सका,—नतीजा यह हुआ कि अतुलकी आँखोंके आगे अँधेरा छा गया और वह वहींका वहीं बैठ गया।

मणीन्द्र बहुत ही अप्रतिभ हुआ। इतने जोरसे मारनेका न उसका इरादा ही था और न इसकी जरूरत ही थी। व्यग्र होकर उसने झुककर दोनों हाथ पकड़के अतुलको उठाकर ज्यों ही खड़ा किया त्यों ही वह क्रोधोन्मत्त चीतेकी तरह उससे लिपट पड़ा और नोंच-खरोंचकर, दाँतोंसे काट-कूटकर, ऐसे ऐसे झूठे रिश्तोंका नाम ले लेकर पुकारने लगा जिनका कि होना हिन्दू-समाजमें रहकर चचेरे भाइयोंमें बिलकुल असम्भव है। मणीन्द्र आश्चर्यसे दंग और हतबुद्धि-सा रह गया।

वह मेडिकल कालेजमें ऊँचे क्लासमें पढ़ता है और उमरमें छोटे भाइयोंसे काफी बड़ा है। वे बड़े भाईके सामने खड़े होकर आँख उठाके बात तक नहीं कर सकते,—इस घरमें हमेशासे ऐसा ही वह देखता आया है। कोई इस तरहकी अकथ्य और अश्राव्य गाली-गलौज भी मुँहसे निकाल सकता है, यह उसकी कल्पनाके बाहरकी बात थी। अब तो उसे हिताहितका ज्ञान शेष न रहा,—उसने अतुलकी गरदन पकड़कर जोरसे पक्के चबूतरेपर पटक दिया और लात मारते मारते उसे ऊपरसे आँगनमें ढकेल दिया। कन्हाई, विपिन, पटल वगैरह जोर जोरसे चीत्कार कर उठे। मणीन्द्रकी मा सिद्धेश्वरी संध्या छोड़कर उठ आईं, मँझली बहू एकान्त कमरेमें बैठी दो एक ' संदेस ' मुँहमें डालकर पानी पीनेकी तैयारी कर रही थी, शोर सुनकर बाहर आके जो देखा तो वह एकबारगी नीली पड़ गई। मुँहका सन्देस फेंककर इस तरह रोती हुई लड़केपर औंधी पड़ गई जैसी कोई मर गया हो। सब मिलाकर ऐसा गोलमाल हो गया कि बाहरसे मालिक लोग काम-काज छोड़-छाड़कर भीतर आ पहुँचे। शैलजा रसोई-घरसे मुँह निकालकर मणीन्द्रसे "मणि, तू बाहर जा," कहकर फिर अपने कामसे लग गई। मणि चुपकेसे बाहर चला गया। उसके पिता भी मँझली बहूकी उन्मत्त भंगिमा देखकर मारे शरमके वहाँसे चल दिये।

जब यह। मामला जरा कुछ शान्त हुआ, तब हरीशने लड़केसे पूछा। अतुलने रोते रोते छोटी चाचीपर सारा दोषारोप करते हुए कहा, " उसने बड़े भाईको मारनेके लिए सिखा दिया था "—इत्यादि इत्यादि। हरीशने चिल्लाकर कहा, " छोटी बहू, मनीको तुमने खून कर डालनेके लिए सिखा दिया था, क्यों ? "

नीलाने रसोई-घरके भीतरसे छोटी चाचीकी तरफसे जवाब दिया, "अतुल भइया बात नहीं सुनते थे, और बड़े भइयाको इन्होंने गाली दी है, इसीसे—"

नयनताराने लड़केकी तरफसे कहा, "तो मैं भी कह दूँ छोटी बहू,— तुम्हारे हुकुमसे उसे मारा जा रहा था इसीसे उसने गालियाँ दी होंगी, नहीं तो, गाली देनेवाला लड़का नहीं है मेरा अतुल।

"हाँ, सो नहीं है!" कहकर समर्थन करते हुए हरीशने और भी क्रुद्ध स्वरमें पूछा, "तू अपनी छोटी चाचीसे पूछ तो नीला, वे हैं कौन जो अतुलको मारनेका हुकुम देती हैं? बात जब उसने नहीं सुनी तब हम लोगोंसे शिकायत क्यों नहीं की? हम लोगोंके मौजूद रहते हुए वे दण्ड देने क्यों चलीं?"

नीलाने इन तीन प्रश्नोंमेंसे एकका भी उत्तर नहीं दिया। सिद्धेश्वरी अब तक बरामदेके एक किनारे हारी-थकी-सी चुपचाप बैठी हुई थीं। उनके बीमार शरीरके लिए यह उत्तेजना बहुत ज्यादा हो गई थी। एक तो, वे इस गृहस्थीमें बाल-बच्चोंको पाल-पोसकर बड़ा करनेके सिवा साधारणतः और किसी विषयमें कुछ दखल नहीं देना चाहती थीं; कारण, उन्होंने मन ही मन ऐसी धारणा बना ली थी कि भगवान्‌ने इस घरके विषयमें न्याय नहीं किया। उन्हें बड़ी बहू और गृहिणी बनाकर भी उसके योग्य बुद्धि नहीं दी, और शैलजाको सबसे छोटी और छोटी बहू बनाके भी ढेरकी ढेर बुद्धि दे दी है। हिसाब करनेमें, चिट्ठी-पत्री लिखनेमें बातचीत करनेमें, रोग-शोकके समय चारों तरफ निगाह रखनेमें, सबपर शासन करनेमें, रसोई आदि बनानेमें, जिमाने-परोसनेमें, घरके सजाने-करनेमें उसका कोई मुकाबिला नहीं कर सकता। वे अकसर कहा करतीं कि अगर मेरी शैलजा कहीं मर्द होती तो अब तक जज हो जाती। उसी शैलजाको जब मँझले बाबू खरी-खोटी सुनाने लगे तो शायद भगवान्‌ उनके माथेमें सहसा गृहिणीके योग्य कर्तव्य-बुद्धि ठूँस गये। सिद्धेश्वरीने जरा-कुछ रूखे स्वरमें कह डाला, "ठीक तो है लालाजी, अगर यही बात है तो तुम फिर हम लोगोंसे शिकायत न करके बहूपर खुद ही क्यों शासन कर रहे हो? मा मौजूद हैं, मैं जिन्दा हूँ,—बहू-बेटीपर शासन करना होगा तो हम लोग करेंगी। तुम मरद आदमी हो, जेट हो,—यह कैसी बात है,—जाओ, बाहर जाओ, लोग सुनेंगे तो क्या कहेंगे?"

हरीश शर्मिन्दा होकर बोले, "तुम सब तरफ निगाह रख सकतीं तो चिन्ता ही किस बातकी थी भाभीजी! तब क्या कोई किसीको घरमें जानसे मार डाल

सकता था ?" यह कहकर वे बाहर जाना ही चाहते थे कि उनकी स्त्रीने टोक कर कहा, "अच्छी बात तो है, खड़े खड़े देख लो न, वे किस तरह बहू-बेटी-पर शासन करती हैं !"

हरीश इस बातका जवाब दिये बिना बाहर चले गये।

४

पाँचेक दिन बाद सवेरेसे ही मँझली बहूकी चीज-वस्त बँधने लगी। सिद्धेश्वरी इस बातको जान गईं और दरवाजेके बाहर आकर खड़ी हो गईं। मिनट-भर चुपचाप देखते रहनेके बाद बोलीं, "आज यह सब क्या हो रहा है मँझली बहू ?"

नयनताराने उदासीनताके साथ जवाब दिया, "देख ही तो रही हो।"

"सो तो देख रही हूँ। कहाँ जाना होगा ?"

नयनताराने उसी तरह कहा, "जहाँ हो।"

"फिर भी, कहो तो सही ?"

"कैसे कहूँ जीजी, कहाँ जायँगे ? वे घर ठीक करने गये हैं, वगैरे लौ तो कुछ कह नहीं सकती।"

"तुम्हारे जेठजीको मालूम है ?"

"उन्हें मालूम करके क्या होगा ? जिनको मालूम करना जरूरी है, वे छोटी बहूजी सब जानती हैं। ओटमेंसे झाँककर एक बार देख भी गई हैं।"

नयनताराने यह झूठ कहा था। शैलजाको सवेरेसे दम लेनेकी भी फ़ुरसत नही होती,—उसे कुछ भी मालूम नहीं था।

सिद्धेश्वरी क्षण-भर मौन रहकर कहा, "देखो मँझली बहू, अपने जेठजीकी मान-मर्यादा तुम लोगोंने अभी तक समझी नहीं; मगर, बाहरवालोंसे पूछो तो सुनोगी, जन्म-जन्मान्तरकी बड़ी तपस्यासे ही ऐसे जेठ मिलते हैं, नहीं तो नहीं मिलते।"

नयनतारा सहसा उद्दीप्त हो उठी, बोली, "हम लोग क्या यह बात जानते नहीं, जीजी ? हम दोनों जनें दिन-रात कहते हैं, सिर्फ जेठ ही नहीं, ऐसी जिठानी भी बड़े पुण्यसे ही मिलती हैं। तुम्हारे घर तो हम लोग घर-द्वार झाड़-बुहारकर नौकरोंकी तरह भी रह सकते हैं; पर, यहाँ तो अब एक घड़ी भी नहीं।"

आज नयनताराके कण्ठस्वरमें ऐसी कुछ आन्तरिकताका आभास सिद्धेश्वरीको मिला कि वे आर्द्र हो गईं। बोलीं, "यह मेरा नहीं, मँझली बहू, तुम्हीं लोगोंका घर है। मैं हरगिज तुम लोगोंको और कहीं नहीं जाने दे सकती।"

नयनताराने गरदन हिलाकर करुण कण्ठसे कहा, "अगर भगवानने कभी ऐसा दिन दिखाया, जीजी, तो तुम्हारे पास ही रहूँगी; पर यहाँ तुम एक दिन भी रहनेके लिए मत कहो। मेरा अतुल सबकी आँखोंका काँटा हो गया है यहाँ, आज्ञा दो, उसे लेकर हम लोग चले जायँ।"

सिद्धेश्वरीने अत्यन्त क्रुद्ध होकर कहा, "यह कैसी बात कहती हो मँझली बहू ? अचानक एक दिन एक घटना हो गई तो क्या उसी बातको याद रक्खे रहना होता है ? अतुल हम लोगोंका अपना लड़का है—"

बात खतम होने तक भी नयनतारा धीरज न रख सकी। कह उठी, "कोई बात याद नहीं रख सकती हूँ, इसीलिए तो उनकी फटकारें खाते खाते मरी जाती हूँ जीजी! जब कुछ हुआ तब दैया-मैया करके रो-पीट लेती हूँ; किंतु घड़ी-भर बाद ही वही गंगाजलका गंगाजल!—एक भी बात तो मुझे याद नहीं रहती। मैं तो सब कुछ भूल ही गई थी; लेकिन,—गुस्सा नहीं होने दूँगी जीजी, तुम्हें,—तुम चाहे जितना कहो, अपनी छोटी बहू मामूली औरत नहीं है। घर-भरमें सबको सिखा दिया है उसने, इसीसे कोई मेरे अतुलसे बोलता तक नहीं। बच्चेको सूखा-सा मुँह लिये डोलते देखकर ही मैंने पूछा और जाना कि बात क्या है।—नहीं जीजी, यहाँ अब हम लोगोंके रहनेसे काम नहीं चलेगा। एक घरमें रहते हुए बच्चा मेरा मन-ही-मन इस तरह दुःख-शोकसे तड़पता फिरेगा तो बीमार पड़ जायगा। इससे तो और कहीं जाकर रहनेमें ही भलाई है। उसकी भी छाती ठण्डी हो, और मैं भी दम ले सकूँ।" यह कहते कहते लड़केके दुःखसे नयनताराकी आँखोंसे दो बूँद आँसू ढलक पड़े जिनने सिद्धेश्वरीको भी गला दिया। किसीके बच्चेका कोई भी दुःख उनसे सहा न जाता था। अपने आँचलसे मँझली बहूके आँसू पोंछकर सिद्धेश्वरी चुप हो रहीं। बिना कुछ शब्द निकाले इतनी बड़ी कठिन सजा देनेका इतना सहज कौशल भी संसारमें हो सकता है, इसकी वे कल्पना भी नहीं कर सकती थीं। एक लम्बी साँस लेकर वे बोलीं, "आहा, बच्चा मेरा! घरमें क्या कोई भी उससे बात नहीं करता, मँझली बहू ?"

नयनताराने भी एक दीर्घ निःश्वास लेकर कहा, "पूछ देखो न जीजी!"

हरिचरणको वहीं बुलाकर सिद्धेश्वरीने पूछा। हरिचरणने तेजीके साथ उसी वक्त जवाब दिया, "उस नीचके साथ कौन बात करेगा मा? बड़े भइयाको जो मुँहमें आता है सो कहता है और छोटी चाचीजीको गालियाँ देता है।"

सिद्धेश्वरीसे सहसा कुछ जवाब देते न बना। थोड़ी देर बाद वे बोलीं, "जो हो गया सो हो गया, उसका तो अब उपाय ही क्या है हरि,—जाओ पास बुलाकर बोल-चाल करो उससे सब।"

हरिचरणने सिर हिलाते हुए कहा, "उसके साथ बोलने-चालनेवालोंकी कमी नहीं है मा! मुहल्लेके अस्तबलोंमें बहुत-से गाड़ीवान हैं, वहीं जाय, बहुतसे यार-दोस्त मिल जायँगे उसे वहाँ।"

नयनतारा जल-भुनकर बोली, "तेरी जबान भी तो कुछ कम नहीं चलती हरी, तू ऐसी बातें हमारे सम्बन्धमें कहता है? अच्छा, यही भला। हम लोग गाड़ीवानोंके साथ ही मेल-जोल करेंगे। उठो जीजी, चीज-बस्त सब नौकर बाँध-बूँधकर तैयार कर ले।"

हरिचरणने माकी तरफ देखकर कहा, "अतुल सबके सामने खड़ा होकर अपने कान पकड़े, नाक रगड़े, तब हम लोग उससे बात करेंगे। नहीं तो छोटी चाचीजो,......नहीं, मा, ऐसे हम लोग नहीं बोल-चाल सकते।" इतना कहकर और किसी तर्क-वितर्ककी राह न देखकर वह कमरेसे बाहर चला गया।

सिद्धेश्वरी उदास होकर बैठी रहीं। मँझली बहूने मृदु कण्ठसे कहा, "पर छोटी बहू अगर एक दफे लड़कोंको बुलाकर कह दे, तो सारा झगड़ा निबट जाय।"

सिद्धेश्वरीने धीरेसे सिर हिलाकर कहा, "हाँ, सो तो निबट जाय।"

मँझली बहूने कहा, "अब तुम्हीं देख लो, जीजी। ये सब लड़के बड़े होकर तुम्हें मानेंगे? या चाहेंगे? भविष्यकी बात तो कही नहीं जा सकती—पर अभी तो तुम्हारे लड़के-वाले पराये हुए जा रहे हैं। मेरे अतुल-टतुलको तुम और चाहे जो भी कहो, पर अपनी माके लिए वे जान देते हैं। मैं कह दूँ तो उनकी मजाल क्या कि वे इस तरह सिर हिलाकर ताव दिखाके चले जायँ! इतनी ज्यादती लेकिन अच्छी नहीं जीजी।"

सिद्धेश्वरी इन सब बातोंमें शायद चित्त न दे सकीं; निरीह भावसे उन्होंने उत्तर दिया, "सो तो है ही, तभी तो इस घरके मनीसे लेकर पटल तक सबके सब उसी शैलके बसमें हैं। वह जो कहेगी, जो करेगी, सो ही होगा,—मुझे तो

कोई कुछ समझता ही नहीं।"

"यह क्या अच्छा है?"

सिद्धेश्वरीने मुँह उठाकर कहा, "क्या?—अरी ओ नीला, अपनी चाचीको जरा बुला देना बिटिया।"

नीला किसी कामसे इधर आ रही थी, लौट गई। नयनतारा और कुछ नहीं बोली। सिद्धेश्वरी भी उत्सुकताके साथ बाट देखने लगीं।

शैलजाके कमरेमें घुसते ही वे कह उठीं, "चीज-बस्त सब बँध गई है,—तो फिर ये सब चल दें क्या?"

शैलजाको कुछ भी मालूम न था, वह जरा डर-सी गई; और बोली, "क्यों?"

सिद्धेश्वरीने कहा, "और नहीं तो क्या,—कैसा पत्थरका कलेजा है तेरा शैल! तेरे हुकमसे कोई अतुलके साथ खेलता नहीं, कोई बोलता तक नहीं,—बच्चेके दिन कैसे कटें, बता तो सही? और अपने लड़केकी दिन-रात सूखती हुई सूरतको देखते हुए मा-बापसे भी कैसे रहा जाय यहाँ?—तो फिर क्या तू इन लोगोंको इस घरमें रहने नहीं देना चाहती?"

नयनताराने चुटकी लेते हुए कहा, "तब तो फिर छोटी बहूको सब ओरसे आराम ही आराम हो जायगा!"

शैलजाने यह बात कानपर ही नहीं दी और सिद्धेश्वरीसे कहा, "ऐसे लड़केके साथ मैं अपने घरके किसी लड़केको हरगिज मिलने-जुलने नहीं दे सकती। जीजी, वह इतना बिगड़ गया है कि कुछ कहनेकी बात नहीं।"

अब तो नयनतारासे और न सहा गया। वह क्रुद्ध सर्पिणीकी तरह सिर उठाकर फुफकार उठी, "अभागी, माके मुँहपर तू इस तरह लड़केकी बुराई कर रही है! दूर हो जा मेरे कमरेसे। जीभ तेरी गल जाय।"

"मैं अपनी इच्छासे कभी तुम्हारे कमरेमें पाँव नहीं रखती, मँझली जीजी। पर, तुमने इसी तरह अपने लड़केको नष्ट कर दिया है।" यह कहकर शैलजा शान्त भावसे कमरेसे निकल गई।

सिद्धेश्वरी बहुत देरतक विह्वलकी भाँति बैठी रहीं। क्या करें, क्या कहें, मानों कुछ भी सोच न सकीं।

नयनतारा सहसा रो पड़ी, बोली, "हमारी माया-ममता सब छोड़ दो, जीजी, हम लोग चले जाते हैं। ये एक पेटके भाई हैं, इसीसे तुम हमको इस तरह

खींच-तानकर एक साथ रखना चाहती हो; पर, छोटी बहूकी जरा भी इच्छा नहीं कि हम लोग इस घरमें रहें।"

सिद्धेश्वरीने इस बातका जवाब न देकर कहा, "वे लोग जैसा कहते हैं, अतुल वैसा ही क्यों नहीं करता? उसने भी तो अच्छा काम नहीं किया मँझली बहू।"

"मैं क्या जीजी, कह रही हूँ कि उसने अच्छा काम किया है? समझ-बूझ हो तो क्या कोई बड़े भाईको गाली-गलौज दे? अच्छा, मैं उसकी तरफसे तुम सबके पाँवोंपर नाक रगड़ती हूँ।" यह कहकर नयनताराने जमीनपर जोरसे अपनी नाक रगड़ दी, और फिर मुँह उठाकर कहा, "उसे तुम माफ करो जीजी, उसका मुँह देखकर मेरी छाती फटी जाती है।" इसके बाद नयनतारा शायद और एक बार नाक रगड़ने जा रही थी कि सिद्धेश्वरीने हाथ बढ़ाकर उसे रोक दिया और खुद भी आँखें पोंछ लीं।

दोपहरको रसोई-घरमें बैठकर सिद्धेश्वरी जब बहुत कह-सुनकर,—बहुत तर्क-वितर्क करके भी, शैलजाको राजी न कर सकीं तो गुस्सेमें आकर बोलीं, "अपने मनकी बात खोलके कहती क्यों नहीं शैल, मँझली बहू चली जाय यहाँसे?"

प्रत्युत्तरमें शैलजाने एक बार मुँह उठाकर देख भर लिया। उस चितवनने सिद्धेश्वरीको और भी क्रुद्ध कर दिया। वे बोलीं, "अपनी माके पेटके भाईको अलग कर दें और तुम्हें लेकर रहें,—तब दूसरे लोग हमारे मुँहपर कालिख पोतें? हमारी घर-गिरस्तीमें सबसे बनाकर न चल सको तो जहाँ सुभीता हो वहाँ तुम लोग चले जाओ,—मुझसे अब नहीं सहन होता। उन लोगोंकी अपेक्षा तुम लोग तो मेरे ज्यादा अपने हो नहीं।" यह कहकर सिद्धेश्वरी वहाँसे उठके खड़ी हो गईं। उन्हें शायद मन ही मन आशा थी कि अब शैलजा नरम पड़ जायगी। परन्तु, जब वह एक भी बातका जवाब न देकर चुपचाप चमचा-करछुली चलाती हुई रसोईमें लगी रही, तब वे सचमुच ही मारे महाक्रोधके अन्यत्र चली गईं।

दोपहरको बड़े बाबू जब भोजन करने बैठे तब सिद्धेश्वरीने पंखेकी बयार करते करते दुःख और अभिमानसे भरकर इसी बातका जिक्र छेड़ लिया। बोलीं, "देखती हूँ कि मँझली बहू वगैरहका तो अब इस घरमें रहना मुश्किल है। आज सवेरेसे ही उन लोगोंकी चीज़-वस्तकी बाँधा-बूँधी हो रही है।"

गिरीशने मुँह उठाकर पूछा, "क्यों?"

सिद्धेश्वरीने कहा, "और नहीं तो क्या! एक तो ऐसे ही छोटी बहूसे रत्ती-भर

बनती नहीं, उसपर छोटी बहूने घरके सब लड़के बच्चोंको सिखा दिया है कि कोई अतुलसे बोले-चाले तक नहीं। वह बेचारा इन कई दिनोंमें सूखके मानों आधा रह गया है—"

इसी समय शैलजा दूधका कटोरा हाथमें लिये दरवाजेके पास आ खड़ी हुई। वह अपने वस्त्रोंको फिरसे एक बार अच्छी तरह सँभालकर भीतर आई और थालीके समीप कटोरा रखकर बाहर चली गई।

सिद्धेश्वरीने उसे सुनाते हुए कहा, "यह जो छोटी बहू है—" इतना कहते ही उन्होंने देखा कि अपना नाम सुनकर शैलजा ओटमें जाकर खड़ी हो गई है। उस पक्षका दोष चाहे कितना ही हो, पर अतुल और उसकी माके दुःखसे सिद्धेश्वरीका मातृ-हृदय विगलित हो गया था। किसी तरह यह मिट मिटा जाय तो उनकी जानमें जान आ जाय, परन्तु, शैलजा किसी तरह भी बात नहीं मानती, इस कारण, उनकी देह जली जा रही थी। इसीलिए आज उसे सजा दिलवानेके लिए उन्होंने कमर बाँध ली थी। बोलीं, "यह जो शैल भाई-भाईयोंमें अभीसे मनमुटाव पैदा किये दे रही है,—बड़े होनेपर तो ये लोग लट्ठमार मारपीट करते फिरेंगे,—सो क्या अच्छी बात होगी?"

बड़े बाबूने कौर मुँहमें देते हुए कहा, "बहुत बुरी बात होगी।"

सिद्धेश्वरी कहने लगीं, "उसीके कारण तो मनीने अतुलको इस तरह मारा-पीटा। अच्छा, उसने भी पीटा है और गाली दी है,—सब, हिसाब चुक गया, अब फिर क्यों लड़कोंको उसने बोलने-चालनेकी मनाही कर दी? आज तुम मनी-हरीको बुलाकर कह देना कि वे अतुलसे बोल-चाल करें, नहीं तो इन लोगोंके चले जानेसे मुहल्लेके लोग हमारे मुँहपर कालिख लगायेंगे। और, बात भी सच है, छोटी बहूके लिए तुम कुछ अपने सगे भाई और बहूको तो छोड़ नहीं सकोगे!"

"सो तो नहीं होगा," कहकर वे भोजन करने लगे।

"अच्छा, छोटे लालाजी क्या कभी कोई रोजगार करनेकी फिकर नहीं करेंगे? क्या इसी तरह सब दिन बिता देंगे?"

पतिका प्रसंग छिड़ते ही शैलजा कानपर हाथ रखकर जल्दीसे चली गई। जेठजीने क्या जवाब दिया, यह सुननेकी वह राह न देख सकी। कान लगाकर ये सब बातें वह कभी नहीं सुनती; और न सुनना चाहती ही है। कारण

मन ही मन उसे इस बातकी काफी आशंका है कि उसके पतिके विषयमें जो आलोचना होगी वह सिवा अप्रियके और कुछ नहीं हो सकती। यद्यपि सत्यसे वह आजीवन प्रेम करती आई है,—वह चाहे प्रिय हो या अप्रिय,—उसे कहने और सुननेमें उसने कभी मुँह नहीं फेरा,—परन्तु, यह कहना कठिन है कि पतिके विषयमें कैसे वह अपने इस स्वभावको लाँघ गई।

५

सिद्धेश्वरीने चाहे जितने क्रोधमें आकर पतिसे शिकायत करना क्यों न शुरू किया हो, पर शैलजाको जल्दीसे प्रस्थान करते देखकर उनको होश आया कि कुछ ज्यादती हो गई है। पतिके सम्बन्धमें खोंचा दिये जानेपर शैलके दुःख और अभिमानकी सीमा नहीं रहती, इस बातको वे जानती थीं।

स्त्रीको चुप हो जाते देखकर बड़े बाबूने मुँह उठाकर निहारा और कहा, "मैं खूब अच्छी तरह डाँट दूँगा।" इसके बाद भोजन समाप्त करके पान खानेके समयके भीतर ही वे सब भूल गये।

वास्तवमें गिरीशका स्वभाव कुछ विचित्र ही किस्मका था। अदालत और मुकद्दमोंके सिवा कोई भी बात उनके मनमें स्थान नहीं पाती थी। घरमें क्या हो रहा है, कौन आता है,—कौन जाता है, क्या खर्च होता है, लड़के-बाले क्या कर रहे हैं,—आदि किसी भी बातकी वे खोज खबर नहीं लेते थे। रुपये पैदा करते हैं, और भली-बुरी सभी बातोंमें 'हूँ, हाँ' कहके, जो भी हो, कोई एक राय देकर अपना कर्तव्य पूरा कर दिया करते हैं।

लिहाजा बड़े बाबू 'डाँट दूँगा' कहकर जब घरके मुखियाका कर्तव्य समाप्त करके बाहर चले गये, तब सिद्धेश्वरीने न तो कुछ कहा ही और न यही पूछा कि किसे डाँट देंगे?

नयनतारा बगलके कमरेमें कान लगाये सब सुन रही थी। जेठ और जिठानीका मन्तव्य सुनकर वह पुलकित चित्तसे वहाँसे चली गई। किन्तु कुछ ही मिनट बाद वापस आकर जिठानीसे बोली, "ऐसी क्यों बैठी हो जीजी, बेला हो गई है, जो खाया जा सके चलके कुछ खा-पी लो।"

सिद्धेश्वरीने उदास भावसे कहा, "बेला अभी कहाँ हुई,—अभी तो कुल ग्यारह बजे हैं।"

"ग्यारह भी क्या कम वेला है, जीजी ! तुम्हारी बीमारीकी देहमें तो नौ बजेके भीतर ही खा-पी लेना चाहिए।"

सिद्धेश्वरीको इस समय खाने-पीनेकी बात जरा भी अच्छी नहीं लग रही थी। वे बोलीं, "सो होने दो मँझली बहू, मैं इतनी जल्दी कभी नहीं खाती, —मुझे जरा देर है।"

नयनताराने छोड़ा नहीं, पास जाकर हाथ पकड़ लिया और अपने स्वरमें उत्कण्ठा उँड़ेलते हुए कहा, "इसीलिए तो पित्त चढ़कर देहकी ऐसी हालत हो गई है। मेरे हाथमें रसोईघर होता तो क्या मैं नौ बज जाने देती ? तुम न जीओगी तो और किसीका क्या बिगड़ता है जीजी, हम ही लोगोंका सत्यानाश है। उठो, चलो, जो हो, तुम्हें थोड़ा-बहुत खिलाकर निश्चिन्त होऊँ।"

नयनताराको यहाँ आये एक महीनेसे ज्यादा होने आया है। जिठानीके लिए रोज इस तरहकी दारुण अस्थिरता भोगते हुए भी अब तक उसने क्यों नहीं अपनेको सुस्थिर करनेकी चेष्टा की, सिद्धेश्वरी मन-ही मन इसका कारण समझ गई। परन्तु कैतववादकी (धूर्तता और कपटके शास्त्रकी) कुछ ऐसी महिमा है कि सब कुछ समझते हुए भी आर्द्र-चित्तसे वे कहने लगीं, "तुम मेरी अपनी हो, इसीलिए यह सब कह रही हो मँझली बहू ! नहीं तो कौन है मेरा अपना, बताओ ?"

नयनतारा हाथ पकड़कर सिद्धेश्वरीको रसोईघरमें ले गई और उसने अपने हाथसे जगह करके, पीढ़ा बिछाकर, उन्हें बिठाके महाराजिनसे थाली मँगवाकर अपने हाथसे उनके सामने रख दी।

निरामिष रसोईघरकी तरफ शैलजा रसोई बना रही थी, मँझली बहूने नीलाको बुलाकर कहा, "अपनी छोटी चाचीसे बोल, उस रसोईमें क्या बना है सो दे जाय।"

मिनट-भर बाद शैलजा आकर साग तरकारी वगैरह परोसकर चुपचाप चली जा रही थी,—इतनेमें सिद्धेश्वरीने मँझली बहूको लक्ष्य करके रोगीके स्वरमें कराहते हुए कहा, "तुम सब एक साथ क्यों नहीं बैठ गई, मँझली बहू ?"

मँझली बहूने कहा, "हम लोग तो तुम्हारी तरह मरने नहीं बैठीं जीजी, तुम खा लो, मैं तुम्हारी ही थालीमें बैठ जाऊँगी।" फिर शैलजाकी तरफ कनखियोंसे देखकर अपेक्षाकृत ऊँचे स्वरमें कहा, "नहीं जीजी, अपने जीते-जी तुम्हें इस तरह धोखा देकर भागने नहीं दूँगी, कहे देती हूँ !" इसके बाद जरा देर चुप

रहकर और छोटी बहू कितनी दूरीपर है, यह देखते हुए कहा, "ये दोनों जनें जैसे एक पेटके सगे भाई हैं, हम दोनों भी तो उसी तरह दो बहनें हैं। चाहे जहाँ, चाहे जितनी दूर भी रहूँ जीजी; रक्तके आकर्षणसे मैं जितनी तुम्हारे लिए रो रो मरूँगी, क्या और कोई उतना रोयेगी? और लोग करेंगी अपने भलेके लिए, पर मैं करूँगी भीतरसे। तुमने अभी जो कहा न कि मेरे सिवा तुम्हारी और कोई सचमुचकी अपनी नहीं है, सो इस बातको कभी किसी दिन भूल न जाना जीजी!"

सिद्धेश्वरीने विगलित-कण्ठसे कहा, "यह क्या भूलनेकी बात है, मँझली बहू? इतने दिन तक तुम्हें पहचान नहीं सकी बहिन, शायद उसीकी सजा भगवान् मुझे दे रहे हैं।"

मँझली बहूने आँचलसे अपने आँखोंके आँसू पोंछते हुए कहा, "सजा जो कुछ भगवान्‌को देनी हो सो मुझहीको दें; जीजी। सब दोष मेरा है, मैंने ही तुम्हें नहीं पहचाना था।" जरा ठहरकर फिर कहा, "और आज यदि जान भी सकी कि हम लोग तुम्हारे पाँवोंकी धूलके लायक भी नहीं हैं, तो भी जताऊँ कैसे जीजी, इस बातको? तुम्हारे पास रहकर तुम्हारी सेवा कर सकूँ, भगवानने वह दिन तो मुझे दिया ही नहीं। हम लोग तो छोटी बहूकी आँखोंके काँटे हो रहे हैं।"

सिद्धेश्वरी उद्दीत कण्ठसे कह उठीं, "तो वह अपने बाल-बच्चोंको साथ लेकर देशके घरमें जाकर रहे। मैं उसकी सात पीढ़ीको दूध-भात खिलाऊँ, क्या अपना सत्यानाश करनेके लिए? चचेरा भाई, भौजाई और उनके लड़के-बाले,—यही तो रिश्ता है? बहुत खिला-पिला चुकी, बहुत पहना-उढ़ा चुकी.—अब नहीं। नौकर-नौकरानियोंकी तरह मुँह बन्द करके मेरी गिरस्तीमें रह सके तो रहे, नहीं तो चली जाय।"

सिद्धेश्वरीको इस बातका स्वप्नमें भी खयाल न था कि पास ही चौखट पकड़े शैलजा खड़ी है। सहसा उसके आँचलकी चौड़ी लाल किनारी प्रदीप्त अग्नि-शिखाकी तरह सिद्धेश्वरीकी आँखोंके सामने जल उठते ही उन्होंने गरदन बढ़ाकर देखा,—ठीक पासके कमरेकी चौखट थामे वह स्तब्ध होकर खड़ी खड़ी अब तककी सब बातें सुन रही है। उसी वक्त मारे डरके पल-भरमें उनकी भोजन-रुचि जाती रही और उन्हें लगा कि इस मँझली बहूको उसकी समस्त आत्मीयताके साथ विलुप्त करके अगर वे अन्यत्र कहीं भाग जा सकें तो जान बच जाय। मँझली बहूने अत्यन्त उद्विग्न स्वरमें कहा, "यह क्या जीजी, भात सिर्फ इधर उधर कर रही

हो, खाती क्यों नहीं?" सिद्धेश्वरीने रुद्ध स्वरसे कहा. "अब नहीं," मँझली बहूने कहा, "मेरे सिरकी कसम है जीजी, दो कौर और खा लो—"

उसकी बात खतम होनेके पहले ही सिद्धेश्वरी जलके कह उठीं "क्यों वृथा इतना कह रही हो मँझली बहू, मैं नही खाऊँगी,—तुम जाओ मेरे सामनेसे।" यह कहकर सहसा वे सामनेसे थाली हटाकर उठके चल दीं।

नयनतारा मुँह बाये काठकी पुतलीकी तरह देखती रह गई; उसके मुँहसे एक बात तक न निकली। परन्तु, विह्वल होकर अपना नुकसान कर ले, ऐसी स्त्री वह नहीं है। सिद्धेश्वरी उठकर जहाँ हाथ धोने बैठी थीं वहाँ जाकर, और उनका हाथ थामकर उसने विनीत कण्ठसे कहा, "बिना समझे अगर कोई कसूरकी बात कही हो जीजी, तो मैं माफी माँगती हूँ। तुम इतनी कमजोरीकी हालतमें अगर उपास किये रहोगी, तो मैं सच कहती हूँ, तुम्हारे पैरोंपर सिर पटककर मर जाऊँगी।"

सिद्धेश्वरी अपने निकट आप ही लज्जित हो रही थीं। वापस आकर जितना खाया गया उतना खाकर उठ गईं।

पर, अपने कमरेमें बैठकर अत्यन्त असन्तुष्ट भावसे सोचने लगीं, मैंने आज इतनी चोट शैलजाको पहुँचाई कैसे? इसके अनिवार्य दण्ड-स्वरूप शैलजा अति कठोर उपवास अभीसे ही शुरू कर देगी, इसमें रंचमात्र सन्देह न रहा; मगर दोपहरको उन्होंने जब नीलासे पूछा तब मालूम हुआ कि चाची रोटी खाने बैठी है। उस समय उन्हें कितना आनन्द हुआ, कहा नहीं जा सकता, परन्तु साथ ही उनके आश्चर्यका भी ठिकाना न रहा। शैलजा अपनी हमेशाकी आदतको छोड़कर कैसे अचानक ऐसी शान्त और सहनशील हो गई, इसका वे किसी भी तरह निर्णय न कर सकीं।

गिरीश और हरीश दोनों भाई अदालतसे लौटकर शामको एक साथ जल-पान करने बैठे। सिद्धेश्वरी पास ही उदास चेहरेसे बैठी थीं,—आज उनका शरीर-मन कुछ भी अच्छा नहीं था।

गृहिणीके चेहरेकी ओर देखते ही गिरीशको सवेरेकी बात याद आ गई। और सब बातें चाहे याद न रही हों, पर रमेशको डाँट देना है, यह बात उन्हें याद पड़ गई। दरवाजेके पास नीला खड़ी थी। उसी समय उन्होंने हुक्म दिया, "अपने छोटे चाचाको तो बुला ला नीला।"

सिद्धेश्वरीने उत्कण्ठित होकर कहा, "उनको इस समय क्यों बुला रहे हो?"

"क्यों ? उसे अच्छी तरह डाँट देना जरूरी है। बैठे-बैठे वह बिलकुल जानवर हो गया है।"

हरीशने अँग्रेजीमें कहा, "निठल्ला दिमाग शैतानका कारखाना होता है।" फिर सिद्धेश्वरीकी तरफ देखकर कहा, "नहीं नहीं, भाभीजी, उसे तुम ज्यादा सिर न चढ़ाओ, अब तो वह लड़का नहीं रहा।"

सिद्धेश्वरीने कुछ जवाब नहीं दिया, वे गुस्से-भरे चेहरेसे चुपचाप बैठी रहीं।

रमेश उस समय घरपर ही था, बड़े भाईके बुलानेपर धीरेसे उनके कमरेमें आ खड़ा हुआ। गिरीश उसके मुँहकी ओर देखते ही कह उठे, "अतुलके संग तू लड़ा क्यों था रे ?"

रमेशने आश्चर्यके साथ कहा, "मैं लड़ा हूँ ?"

गिरीशने क्रोधसे स्वरमें कहा 'अलबत्त लड़ा है !" फिर स्त्रीकी ओर देखते हुए बोले, "बड़ी बहू कहती हैं कि जो तेरे मुँहमें आया, सो ही कहके उसे गालियाँ दी हैं तूने ! वे क्या मुझसे झूठ कहेंगी ?"

रमेश अवाक् होकर सिद्धेश्वरीके चेहरेकी तरफ देखता रह गया।

सिद्धेश्वरी गरज उठीं, "तुम सठया गये हो क्या ? मैंने कब कहा कि छोटे लालाजीने अतुलको गालियाँ दी हैं ?"

हरीशने भूल-सुधार करते हुए धीरेसे कहा, "नहीं—नहीं, छोटी बहूने।"

तब गिरीशने कहा, "छोटी बहू भी क्यों गाली दे, कहो न ?"

सिद्धेश्वरीने उसी तरह क्रोधके साथ अस्वीकार करते हुए कहा, "वह भी क्यों देने लगी अतुलको गाली ? उसने नहीं दी। और अगर दी भी तो उससे मैं कहूँगी, तुम छोटे लालाजीको क्यों खोंचा दे रहे हो ?"

गिरीशने कहा, "अच्छा यही मान लिया, मगर अभागा ऐसा निकम्मा है कि इसने घास-भुसकी दलाली करके मेरे चार हजार रुपये उड़ा दिये,—और बागबाजारके उन खान लोगोंको देखो जो इसीकी दलालीमें करोड़पति हो गये हैं।"

हरीशने आश्चर्यमें डूबकर कहा, "घास-भुसकी दलाली ?"

रमेशने कहा, "जी नहीं, पाटकी।"

गिरीशने गुस्सेमें आकर कहा, "वे मेरे मवक्किल हैं,—मैं नहीं जानता और तू जानता है ? घास-भुसकी दलाली करके ही वे बड़े आदमी हुए हैं विलायतको जहाजके जहाज घास-भुस भेजा करते हैं।"

हरीश और रमेश दोनों ही चुप हो रहे। गिरीशने उनके चेहरेकी तरफ देखकर कहा, "अच्छा, मान लिया, पाटकी ही सही। इस पाटकी दलालीको करके क्या तू महीनेमें सौ दो नहीं कमा सकता? तुम लोगोंको मैं हमेशा तो इस तरह बैठे बैठे खिला नहीं सकूँगा। आदमी जिस जमीनपर गिरता है, उठनेके लिए उसे उसीका सहारा लेना होता है। एक बार चार हजार गये तो गये, कुछ परवाह नहीं,—और चार हजार ले जा, उससे भी न चले तो और चार हजार सही। पर यह नहीं हो सकता कि मैं मेहनत कर करके मरता रहूँ और तुम बैठे बैठे खाया करो।"

हरीशने मन ही मन अत्यन्त उत्कण्ठित होकर मृदु कण्ठसे कहा, "सब काम सीखना पड़ता है;—पाटकी दलाली ऐसे ही थोड़े आ जाती है! बार बार इतने रुपये बिगाड़ना तो ठीक नहीं है।"

गिरीशने उसी वक्त अनुमोदन करते हुए कहा, "हरगिज नहीं। मैं पाटकी दलाली-वलाली नहीं जानता, तुम्हें घासकी दलाली कलसे शुरू करनी होगी! कल सवेरे मैं बैंकपर आठ हजारका चेक दूँगा। चार हजार रुपयेका घास खरीदना, और चार हजार जमा रखना। जब ये चार हजार बिगड़ जायँ तभी उनमें हाथ लगाना,—उसके पहले नहीं। समझे? मैं तुम लोगोंको बैठे बैठे नहीं खिला सकता,—जाओ।"

रमेश चुपचाप चला गया। हरीशने सिर हिलाते हुए कहा, "ये आठों हजार रुपये भी पानीमें गये, समझ लीजिए। क्या कहती हो भाभीजी?"

सिद्धेश्वरी चुप रहीं। जवाब न पाकर हरीशने भाईकी तरफ देखकर कहा, "रुपये सचमुच ही उसे दे देंगे क्या?"

गिरीशने विस्मयके साथ कहा, "सचमुच ही कैसे?"

हरीशने कहा, "अभी उस दिन तो चार हजार रुपयेपर पानी फेर ही दिया है; अब और आठ हजार उसे पानीमें डालनेके लिए देंगे, इस बातकी तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकता।"

गिरीशने कहा, "तो तुम कहो न, क्या करनेको कहते हो?"

हरीशने कहा, "रमेश रोजगार-ओजगारका जानता ही क्या है भइया? आठ हजार दीजिए और चाहे आठ लाख दीजिए, वह आठ पैसे भी वापस लौटा

कर नहीं ला सकता।—इस बातको मैं शर्त बदकर कह सकता हूँ। इतने रुपये पैदा करके इकट्ठे करनेमें कितना समय लगता है, जरा सोचकर तो देखिए।"

गिरीशने उसी वक्त अनुमोदन करते हुए कहा, "हाँ हाँ, ठीक तो है। ठीक कह रहे हो। उसे रुपये देनेके मानी ही हैं पानीमें फेंक देना। ठीक तो है, वह क्या कोई आदमीमें आदमी है?"

हरीश उत्साह पाकर कहने लगा, "इससे बल्कि अच्छा यही है कि उसे कोई नौकरी-औकरी तलाश कर दी जाय, वही करे। जिसकी जो योग्यता हो, उसके अनुसार उसे काम करना चाहिए। यह जो लड़कोंको पढ़ानेके लिए पचीस रुपये माहवारी मास्टरको देने होते हैं,—कमसे कम यह काम तो उससे हो सकता है। इतने रुपये गृहस्थीके बचाकर भी तो वह हमारी सहायता कर सकता है। क्यों भाभीजी, है न यही बात?"

मगर भाभीजीके जवाब देनेके पहले ही गिरीशने खुश होकर कहा, "ठीक है, ठीक बात कही है तुमने हरीश। गिलहरीकी सहायता लेकर रामचन्द्रजीने समुद्र बाँध दिया था।" फिर स्त्रीकी ओर देखकर कहा, "देखा बड़ी बहू, हरीशने ठीक समझा है। मैं शुरूसे ही देख रहा हूँ न, बचपनहीसे इसकी रुपये-पैसेके मामलेमें बड़ी तेज बुद्धि है। आगेका यह जितना सोच सकता है उतना और कोई नहीं। यह कुछ नहीं कहता तो मैं तो इतने रुपये बिगाड़ ही बैठा था। कलसे ही रमेश लड़कोंको पढ़ाना शुरू कर दे। अखबार पढ़ पढ़के वक्त बिगाड़नेकी जरूरत नहीं।"

सिद्धेश्वरीने कहा, "तो रुपये उन्हें नहीं दोगे क्या?"

"हरगिज नहीं। तुम क्या कहती हो, मैं फिर भी रुपये दे दूँ?"

"तो ऐसी बात कही ही क्यों?"

हरीशने कहा, "कहनेसे ही क्या दे देने पड़ते हैं? इसके कोई मानी नहीं भाभीजी। मैं भी तो भइयाका सहोदार भाई हूँ, मेरी भी तो कोई राय लेनी चाहिए। गृहस्थीके रुपये बिगड़ना मुझे भी तो अखरता है!"

"यही तो तुम्हारी असल बात है, लालाजी!" कहकर सिद्धेश्वरी गुस्सा होकर उठ गई।

सिद्धेश्वरीकी सेवाका भार नयनताराने अपने ऊपर ले लिया था। वह सेवा ऐसी ठोस और पूर्ण है कि उसकी किसी भी संधमेंसे किसीको पास फटकने तकका

मौका नहीं मिल सकता। सिद्धेश्वरीने इतनी सेवा अपनी इतनी ज़िन्दगीमें और किसीसे भी कमी न पाई थी। फिर भी, क्यों उनका अशान्त मन हरदम किसी न किसी बहाने झगड़ा करनेको तैयार हो रहा था,—इसका रहस्य सिर्फ अन्तर्यामी ही जानते हैं। उस दिन सवेरे सिद्धेश्वरी छै महीनेके रोगीकी तरह गिरतीं-पड़तीं रसोई-घरके बरामदेमें जाकर धप-से बैठ गईं। एक गहरी साँस लेकर थके हुए दुर्बल कण्ठसे शायद सामनेकी दीवारको लक्ष्य करके कहने लगीं, "अपनी कोई है तो मँझली बहू। वह न होती तो मुझे शायद सड़ सड़के मरना पड़ता। ऐसी सेवा-टहल तो मेरी अपनी मा-जायी बहन भी शायद नहीं कर सकती।"

शैलजा रसोईघरके भीतर रसोई बना रही थी, उसने सब सुन लिया। इधर कई दिनसे वह न तो बड़ी जिठानीके कमरेमें ही जाती है और न उनसे बोलती ही है। अब भी वह चुप बनी रही।

सिद्धेश्वरीने फिर शुरू कर दिया, "और गैरोंको खिलाना-पिलाना तो पापका फल भोगना,—भसममें घी डालना है। वखतपर कोई कुछ काम नहीं आता। और मेरी यह मँझली बहू,—बात मुँहसे निकलनेकी देर नहीं कि उसे 'हाँ' कहकर चली आती है। मैं जरा पैदल चलती हूँ, तो उसका कलेजा फटता है। मेरी फूटी तकदीर कि ऐसी अपनीको भी मैंने दूसरोंका कहना सुनकर गैर समझ रखा था।"

शैलजाकी चूड़ियोंकी आवाज़, करछुल-चम्मचका शब्द,—सब उनके कानोंमें प्रवेश कर रहा है। इतने पास मौजूद रहते हुए भी जब उसने इतने बड़े असत्य अभियोगका कोई जवाब नहीं दिया, तब तो उनके अधैर्यकी सीमा नहीं रही। उनका मन्द कण्ठस्वर एक क्षणमें सबल और सतेज हो उठा; वे बोलीं, "माके यहाँसे एक चिट्ठी आई है, उसे किसीसे जरा पढ़वाके सुन लूँ, सो भी मेरे नसीबमें नहीं। गैरोंको खिलाऊँ-पिलाऊँ मैं आखिर किसके लिए?"

नीला छोटी चाचीके पास बैठी उसके काममें मदद दे रही थी; वह वहींसे बोली, "वह चिट्ठी तो मँझली चाचीने तुम्हें दो-तीन बार पढ़के सुना दी है मा, फिर नई चिट्ठी और कब आई?"

"तू सब बातोंमें पुरखिनपना मत दिखलाया कर, नीला!" कहकर लड़कीको डाँटकर फिर बोलीं, "चिट्ठी सुननेसे ही हो गया, बस? उसका जवाब नहीं देना है क्या? क्या तेरी छोटी चाची मर गई है, जो मैं दूसरे मुहल्लेसे आदमी बुलवाकर जवाब लिखवाऊँ?"

नीलाने भी गुस्सेमें आकर कहा, " चिट्ठी लिखवानेके लिए क्या और कोई आदमी नहीं है, जो तुम आज इस संक्रान्तिके दिन चाचीको मार रही हो ?"

आज संक्रान्ति है, इस बातकी सिद्धेश्वरीको खबर नहीं थी। वे एक क्षणमें ही एकबारगी फक पड़ गईं, बोलीं, " तैंने तो गजब कर दिया नीला ! मरे दुश्मन ! मरनेकी बात मैंने तुझसे कब कही री ? मेरी पेटकी लड़की मेरा मुँह बन्द कर रही है ! कल जिसको व्याह कर घर लाई और गोदों खिलाके बड़ा किया, वह मेरी छाँह भी नहीं छूती ! इतनी बीमारी भोगती हूँ फिर भी मृत्यु नहीं आती ! आजसे अगर मैं एक बूँद भी दवा पीऊँ तो मुझे बड़ीसे बड़ी—"

रुआईसे सिद्धेश्वरीका गला रुँध गया। वे आँचलसे आँखें पोंछती हुई अपने कमरेमें जाकर एकदम मुरदा-सी होकर बिछौनेपर पड़ रहीं।

नयनतारा बगलके बरामदेमें खिड़कीकी ओटमें खड़ी खड़ी सब देख रही थी। अब वह धीरेसे सिद्धेश्वरीके कमरेमें जाकर उनके पाँयते बैठ गई, और फिर आहिस्तेसे बोली, " एक चिट्ठीका जवाब लिखवानेके लिए उसकी खुशामद करने क्यों गई जीजी ? मुझे हुकम करतीं, तो मैं एक छोड़ दस चिट्ठियोंका जवाब लिख देती।"

सिद्धेश्वरी कुछ बोली नहीं, करवट बदलके दीवारकी तरफ मुह करके रह गई।

नयनताराने जरा चुप रहकर पूछा, " तो क्या अभी जवाब लिखूँ जीजी ?"

सिद्धेश्वरी सहसा रूखे स्वरमें बोल उठीं, " तुम बहुत बकवाती हो मँझली बहू। कह रही हूँ कि अभी रहने दो,—तुमसे नहीं होगा। सो न करके—"

नयनतारा गुस्सा नहीं हुई। जहाँ काम निकालना होता है वहाँ उसका क्रोध-अभिमान प्रकट नही होता। वह चुपचाप उठ गई।

करीब दो-ढाई बजे सिद्धेश्वरीने लड़कीको बुला कर चुपकेसे पूछा, " तेरी छोटी चाचीने रोटी खा ली री ?"

नीलाने आश्चर्यके साथ कहा, " खायँगीं क्यों नहीं ? रोज जैसे खाती हैं, वैसे ही तो खाई है।"

सिद्धेश्वरी 'हूँ' करके चुप हो रहीं।

हम पहले ही कह चुके हैं कि शैलजा हमेशासे ही अत्यन्त अभिमानिनी है। मामूलीसे कारणपर वह खाना बन्द कर देती थी और इसी बातपर सिद्धेश्वरीकी परेशानीका अन्त नहीं था। हाथ पकड़कर, खुशामद करके, पीठ और सिरपर हाथ

फेरकर, नाना प्रकारसे सिद्धेश्वरीको उसे मनाकर प्रसन्न करना पड़ता था। परंतु, आज वही शैलजा, खाने-पहरनेके बारेमें, इतना तिरस्कार होनेपर भी क्यों रंच-मात्र भी क्रोध प्रकट नहीं कर रही है. इसका कोई कारण ही वे स्थिर नहीं कर सकीं। उसका यह व्यवहार उन्हें जितना ही अपरिचित और अस्वाभाविक-सा लगने लगा उतना ही वे भीतरसे मारे भयके व्याकुल होने लगीं। किसी तरह प्रकट रूपसे एक बार झगड़ा हो जावे तो उनकी जानमें जान आ जाय। मगर शैलजा उसके किनारेसे भी नहीं फटकती। सवेरेसे लेकर रात तक वह अपना निर्दिष्ट काम करती रहती है। उसके आचरणसे घरका और कोई कुछ जान ही नहीं सकता। जिन्होंने दस वर्षकी उमरसे उसे सिखा-सिखाकर आदमी बनाया है, सिर्फ वे ही भयार्त्त चित्तसे क्षण क्षण इस बातका अनुभव कर रही हैं कि शैलजाके चारों तरफ एक निर्मम उदासीनताका घना मेघ प्रतिदिन पुंजी-भूत होकर उसे धुँधली और मुश्किलसे दिखाई देनेवाली बनाये दे रहा है।

नीलाने कहा, "मा, मैं जाऊँ?"

माने पूछा, "कहाँ, बोल?"

नीला चुपकी खड़ी रही।

सिद्धेश्वरी तब मारे क्रोधके उठके बैठ गईं और चिल्लाकर बोलीं, "कहाँ जाना है तुझे, कह तो सही? छोटी चाचीके साथ ऐसा तेरा क्या हो गया है री, जो मेरे पास घड़ी-भर भी नहीं टिक सकती? बैठी रह हरामज़ादी, चुपचाप यहीं बैठी रह। तुझे कहीं भी नहीं जाना होगा।" इतना कहकर वे खुद ही धप-से बिस्तरपर पड़ रहीं और उन्होंने दूसरी ओर करवट बदल ली।

नयनताराने दबे-पाँव कमरेमें आकर स्नेहके साथ अनुरोधके स्वरमें कहा, "छिः बेटी, तुम बड़ी हो गई, दो दिन बाद ससुरका घर बसाने जाओगी,—अभी जितने दिन बन सके, मा-बापकी सेवा कर लो। माके पास बैठो-उठो; साथ साथ रहकर दो-चार अच्छी बातें सीख लो; इस समय क्या ऐर-गैरके साथ दिन-भर बिताना ठीक है? जाओ, पास बैठकर घड़ी दो घड़ी पाँवोंपर हाथ ही फेर दो, जीजी सो जायँ जरा। रुग्ण शरीर ठहरा, बहुत देरसे जाग रही हैं।"

नीला मँझली चाचीसे प्रसन्न नहीं थी। मुँह उठाकर उतप्त कण्ठसे बोली, "घरमें ऐर-गैर और किसके साथ दिन-भर बिताती हूँ मँझली चाची? तुम छोटी चाचीजीकी बात कह रही हो क्या?"

उसका रुष्ट और आरक्त चेहरा देखकर नयनतारा विस्मित और नाराज होकर बोली, "मैंने किसीकी बात नहीं कही नीला, मैं सिर्फ कह रही हूँ कि तुम्हें अपनी कमजोर माकी सेवा-टहल करनी चाहिए।"

सिद्धेश्वरीने मुँह बिना फेरे ही कहा, "यह सेवा-टहल करेगी ! बल्कि मैं मर जाऊँ तो इसकी जानमें जान आवे।"

नयनताराने कहा, "यह तो खैर ठीक, अभी बच्चा है, इसे भले-बुरेका ज्ञान नहीं, पर छोटी बहू तो बच्ची नहीं है ! उसे तो कहना चाहिए कि बेटी, दो घड़ी माके पास जाकर बैठ। वह खुद तो आती ही नहीं, और लड़कीको भी नहीं आने देती।"

नीला कुछ जवाब देना चाहती थी, पर किसी तरह उसे दबाकर मुँह मारी करके चुपचाप खड़ी रही।

सिद्धेश्वरीने मुँह फेरकर कहा, "तुमसे सच कह रही हूँ मँझली बहू, मेरी तबीयत नहीं करती कि शैलजाका मुँह देखूँ। वह तो जैसे मेरी दोनों आँखोंके लिए विष हो गई है।"

नयनताराने कहा, "ऐसी बात मत कहो, जीजी। हजार हो, आखिर है वह सबसे छोटी। तुम नाराज हो जाओगी तो उसके लिए फिर खड़े होनेकी भी जगह नहीं। इस बातका तो ध्यान रखना ही होगा।—हाँ, भली याद आ गई। इस महीनेमें उन्हें पाँच सौ रुपये मिले हैं, उनमेंसे फुटकर कुछ रुपये अपने पास रखकर बाकी उन्होंने तुम्हें दे देनेके लिए कहा है,—सो ये लो जीजी।" यह कहकर नयनताराने अपने आँचलकी गाँठ खोलकर पाँच नोट निकालके जिठानीको दिये।

उदास चेहरेसे सिद्धेश्वरीने उन्हें हाथ बढ़ाकर ग्रहण कर लिया और लड़कीसे कहा, "नीला, जा, अपनी छोटी चाचीको बुला ला, जिससे वह आकर लोहेके सन्दूकमें रुपये रख दे।"

नयनताराका चेहरा स्याह पड़ गया। इस रुपये देनेकी बातको लेकर उसने अपनी कल्पनामें जो उज्ज्वल चित्र खींच रक्खे थे, वे सब पुँछकर एकाकार हो गये। सिद्धेश्वरीके चेहरेपर आनन्दकी रेखा तक नहीं दिखाई दी। इतना ही नहीं, रुपये उठाकर रखनेके लिए अन्तमें छोटी बहूको ही बुलाया गया,—सन्दूककी चाबी अब भी उसीके पास है ! वास्तवमें, इन रुपयोंके दिये जानेका एक गुप्त इतिहास था। हरीशकी देनेकी बिल्कुल इच्छा नहीं थी, नयनतारा ही एक

जबरदस्त गार्हस्थिक चाल चलनेकी गरजसे पतिको बार बार कोंच कोंचकर ये रुपये निकलवाकर लाई थी। अब सिद्धेश्वरीके इस निस्पृह आचरणसे रुपये तो उसके पानीमें गये ही, ऊपरसे मारे क्रोध और क्षोभके ऐसी तबीयत होने लगी कि अपना सिर फोड़ डाले।

शैलजा आ उपस्थित हुई। छै दिन बाद उसने बड़ी जिठानीके मुँहकी ओर देखकर स्वाभाविक भावसे पूछा, " जीजी, मुझे बुलाया था क्या ?"

शैलजाके सिर्फ इन दो ही शब्दोंके प्रश्नने सिद्धेश्वरीके कानोंमें अपरिमित सुधा उँड़ेल दी। वे लहमें भरमें विगलित-चित्त होकर उठ बैठीं, बोलीं, " हाँ बहन, बुला तो रही थी। बहुत-से रुपये बाहर पड़े हुए हैं, इसीसे नीलासे कहा कि जा बेटी, अपनी चाचीको बुला ला, रुपये उठाकर सन्दूकमें रख दे। यह लो।" इतना कहकर उन्होंने शैलजाके खुले हुए दाहने हाथपर कुछ नोट रख दिये। आज उन्हें ऐसी इच्छा भी न हुई जो कहें कि ये कब किससे मिले हैं।

शैलजा अपने आँचलमें बँधी चाबीसे सन्दूक खोलकर धीरे-सुस्ते रुपये रखने लगी,—यह नयनताराके लिए असह्य हो उठा। फिर भी, भीतरका चांचल्य किसी तरहसे दबाकर, जरा सूखी हँसी हँसकर वह बोली, " इसीसे तुम्हारे देवर कल मुझसे कह रहे थे, जीजी,—कोई चचेरे या सौतेले भाई नहीं, अपने मा-जाये बड़े भाई हैं। उनका नहीं खाऊँगा-पहनूँगा तो और पाऊँगा कहाँसे ? फिर भी महीने महीने इस तरह पाँच-छै सौ रुपये भी अगर भइयाको सहायता दे सकूँ तो बहुत उपकार हो। क्यों जीजी, है कि नहीं ? "

सिद्धेश्वरीका हास्यपूर्ण चेहरा गम्भीर हो उठा। वे कुछ उत्तर न देकर शैलजाके मुँहकी ओर देखती रहीं। नयनतारा शायद उनकी गम्भीरताका कारण न समझ सकी। बोली, " श्रीरामचन्द्रने गिलहरीकी सहायतासे समुद्र बाँधा था। इसीसे वे जब-तब कहा करते हैं कि बड़ी भाभी मुँह खोलकर किसीसे कुछ माँगती नहीं, पर इसीसे क्या हम लोगोंको अपने आप कुछ न सोचना चाहिए ? जिसकी जितनी शक्ति हो उसे काम धन्धा करके उतनी सहायता तो करनी ही चाहिए। नहीं तो बैठे बैठे सिर्फ खानदानका खानदान खाये, पीये, पहने, घूमे और सोवे;—ऐसा करनेसे कहीं चल सकता है ! तुम्हें भी तो हरी-मनीके लिए कुछ इकट्ठा कर जाना चाहिए। हम लोगोंके लिए ही सर्वस्व उड़ा देनेसे तो तुम्हारा काम चलेगा नहीं। ठीक है कि नहीं, सच्ची तो कहो जीजी ! "

सिद्धेश्वरीने मुँह भारी करके कहा, "सो तो ठीक ही है!"

शैलजाने सन्दूक बन्द करके बड़ी जिठानीके सामने आकर रिंगसे चावी निकाल कर उनके विस्तर पर रख दी और चुपचाप वहाँसे जाने लगी। सिद्धेश्वरी क्रोधमें आग-बबूला हो उठीं, परन्तु, "तुरन्त ही अपनेको सँभालकर तीक्ष्ण धीर भावसे बोलीं, "यह क्या कर रहा हो छोटी बहू?"

शैलजा मुँह फेरकर खड़ी हो गई और बोली, "कई दिनोंसे सोच रही थी जीजी, यह चावी अब मेरे पास रहना ठीक नहीं। अभावसे ही आदमीका चरित्र नष्ट होता है और मेरे चारों तरफ अभाव ही अभाव है— बुद्धि भ्रष्ट होते देर ही कितनी लगती है,—क्यों मझली जीजी?"

नयनताराने कहा, "मैं तो तुम्हारी किसी भी बातमें नहीं पड़ती छोटी बहू, मुझे क्यों झूठमूठ लपेटती हो?"

सिद्धेश्वरीने पूछा, "बुद्धि भ्रष्ट अब तक क्यों नहीं हुई, सुन सकती हूँ क्या?"

शैलजाने कहा, "कोई बात अब तक हुई नहीं, इस लिए कभी न होगी, इसके कोई माने नहीं। ऐसे ही तो तुम लोगोंका हम सिर्फ खा रहे हैं, पहन रहे हैं,—न तो पैसेसे कुछ सहायता कर सकते हैं और न देहसे करते बनता है। मगर, इससे क्या हमेशा इसी तरह करते रहना अच्छा है?"

सिद्धेश्वरीका चेहरा मारे रोषके सुर्ख हो उठा। वे बोलीं, "इतनी भली कबसे हो गई री? इतना भले-बुरेका विचार अब तक तुम लोगोंमें कहाँ था?"

शैलजाने अचलित स्वरमें कहा, "क्यों गुस्सा होकर देहको नष्ट कर रही हो जीजी? तुम्हें भी अब हम लोगोंके साथ अच्छा नहीं लग रहा है और मुझे भी अब अच्छा नहीं लगता।"

मारे क्रोधसे सिद्धेश्वरीके मुँहसे बात नहीं निकली।

नयनताराने उनकी तरफसे पूछा, "मान लिया कि जीजीको अच्छा नहीं लगता; मगर तुम्हें अच्छा क्यों नहीं लगता, छोटी बहू?"

शैलजा इसका जवाब बिना दिये ही बाहर चली जा रही थी, इतनेमें सिद्धेश्वरी जोरसे चिल्लाकर बोल उठीं, "कहतीं जा जलमुँही, कब तू विदा होगी यहाँसे,— मैं सिरनी बँटवाऊँगी। मेरी सोनेकी घर-गिरस्ती लड़ाई-झगड़ेसे बिलकुल जला झुलू कर खाक कर दी। मँझली बहू क्या झूठ कहती है कि कमरमें जोर हुए बगैर आदमीमें इतना तेज नहीं हो सकता? कितने रुपये तैंने मेरे चुराये हैं, उनका हिसाब दिये जा।"

शैलजा मुँड़के खड़ी हो गई। उसका चेहरा और आँखें अग्नि-काण्डकी तरह क्षण-भरमें प्रदीप्त हो उठीं, परन्तु, दूसरे ही क्षण वह मुँह फेरकर चुपचाप चली गई।

सिद्धेश्वरी पेड़की टूटी हुई शाखाकी तरह बिछौनेपर लोट लोटकर रोने लगीं, "अभागीको मैंने इतने छोटेपनसे पाल-पोसकर बड़ा किया मँझली बहू, सो आज मेरा इस तरह अपमान करके चली गई! आने दो, उनको घर आने दो, उसे आज अगर मैंने आँगनके बीच जिन्दा न गड़वा दिया तो मेरा नाम सिद्धेश्वरी नहीं।"

७

सिद्धेश्वरीके स्वभावमें एक बड़ा खतरनाक दोष था,—उनके विश्वासकी रीढ़ नहीं थी। आजका दृढ़ विश्वास कल मामूली-सा कारण मिलनेपर शिथिल हो सकता था। शैलजापर वे हमेशासे एकान्त विश्वास करती आई हैं, परन्तु इधर कुछ ही दिनोंके भीतर नयनताराने जबसे उनके कान भर दिये हैं तबसे उन्हें सन्देह होने लगा है कि बात ठीक है, शैलजाने अपने हाथमें रुपये जमा कर रक्खे हैं; और उन रुपयोंका मूल कहाँ है, इसका अनुमान करनेमें भी उन्हें कोई कठिनाई नहीं हुई। फिर भी, वह पति और बच्चोंको लेकर इस शहरमें कहीं अलग मकान लेकर रहनेका साहस हरगिज नहीं कर सकेगी, सो भी वे जानती थीं।

रातको बड़े बाबू अपने बाहरवाले कमरेमें बैठे, आँखोंपर चश्मा चढ़ाये गैसकी बत्तीके उजालेमें ध्यानसे जरूरी मुकद्दमोंके कागज़ात देख रहे थे। सिद्धेश्वरीने उनके कमरेमें घुसते ही चटसे कामकी बात छेड़ दी। बोलीं, "तुम्हारे इतने परिश्रम करनेसे क्या फायदा है, मुझे बता सकते हो? सिर्फ सूअरोंके झुण्डको खिलाने-पिलानेके लिए ही दिन-रात मेहनत कर करके क्यों जान दे रहे हो?"

गिरीशके कान तक शायद सिर्फ खिलाने-पिलानेकी बात ही पहुँची थी, उन्होंने मुँह ऊपर उठाये बगैर कहा, "नहीं अब देर नहीं है। इतना-सा देखकर ही चलता हूँ खाने, चलो।"

सिद्धेश्वरीने गुस्सा होकर कहा, "खानेकी बात तुमसे कह कौन रहा है? मैं कहती हूँ, छोटी बहू और लालाजी खूब अच्छी तैयारी करके घरसे जा रहे हैं। इतने दिन जो इन लोगोंके लिए किया-कराया सो सब यों ही गया,—इसकी भी कुछ खबर सुनी है?"

गिरीश कुछ सचेतन होकर बोले, "हूँ, सुनी क्यों नहीं! छोटी बहूसे अच्छी तरहसे तैयारी करनेके लिए कह दो। साथमें कौन कौन जा रहा है?—मनिसे..." मुकदमेके कागजातोंके बीच बात यहीं तक असमाप्त ही रह गई।

सिद्धेश्वरी मारे क्रोधके चिल्ला उठीं, "मेरी क्या एक भी बात तुम्हारे कानमें नहीं जाती? मैं क्या कह रही हूँ, और तुम क्या जवाब दे रहे हो? छोटी बहू वगैरह घर छोड़कर जा रहे हैं!"

डाँट खाकर गिरीश चौंक पड़े, पूछा, "कहाँ जा रहे हैं?"

सिद्धेश्वरीने उसी तरह ऊँचे स्वरमें जवाब दिया, "कहाँ जा रहे हैं, सो मैं क्या जानूँ?"

गिरीशने कहा, "पता लिखकर रख लो न!"

सिद्धेश्वरी मारे क्षोभ और अभिमानके पगली-सी होकर माथेपर हाथ मारकर कहने लगीं, "फूटी तकदीर मेरी! मैं जाऊँगी उनका ठिकाना लिखने? मेरी ऐसी फूटी तकदीर न होती तो तुम्हारे पाले पड़ती ही क्यों? बाप-माने हाथ-पाँव बाँधकर मुझे गंगामें क्यों न बहा दिया?" कहते-कहते वे रो पड़ीं। बाप-माने उन्हें एक अपात्रके हाथ सौंप दिया था, आज तेतीस वर्ष बाद इस दुर्घटनाका पता लगनेपर उनके उद्वेग और पश्चात्तापकी सीमा न रही। बोलीं, "आज अगर तुम्हारी आँखें मिच जायँ, तो मैं किसी तरह कहीं दासी-वृत्ति करके गुजर कर लूँगी—और सो तो मुझे करना ही होगा, यह मैं खूब अच्छी तरह जानती हूँ। पर मेरे मनी हरीका कहाँ ठिकाना होगा, इसका—" कहते कहते सिद्धेश्वरीकी रुकी हुई रुलाईने अब इतनी देरमें छुटकारा पाकर आँखोंसे एकबारगी आँसुओंकी धारा बहा दी।

मुकद्दमेके जरूरी कागजात गिरीशके मगजसे गायब हो गये। स्त्रीके आकस्मिक और अत्युग्र रोदनसे विचलित होकर उन्होंने क्रुद्ध गंभीर कण्ठसे आवाज दी,—'हरी!'

हरी बगलके कमरेमें पढ़ रहा था, हड़बड़ाकर भागा चला आया।

गिरीशने खूब जोरसे धमकाकर कहा, "फिर अगर तैंने किसीसे झगड़ा किया तो घोड़ेके चाबुकसे पीठकी चमड़ी उधेड़ दूँगा। हरामजादा कहींका, पढ़ने-लिखनेका नाम नहीं, दिन-रात सिर्फ खेलना और लड़ना। मनि कहाँ है?"

पितासे डाँट फटकार खाना लड़के लोग जानते ही न थे। हरी डरके मारे हतबुद्धि-सा होकर बोला, "मालूम नहीं।"

"मालूम नहीं ? तुम लोगोंकी शरारत मैं जानता नहीं, क्यों ? मेरी सब तरफ निगाह रहती है सो जानते हो ? कौन तुम लोगोंको पढ़ाता है ? बुला उसे।"

हरीने अव्यक्त-कण्ठसे कहा, "हमारे स्कूलके थर्ड मास्टर धीरेन बाबू सवेरे पढ़ा जाते हैं।"

गिरीशने पूछा, "क्यों, सवेरे क्यों ? रातको क्यों नहीं पढ़ाते ? मैं नहीं चाहता ऐसा मास्टर। कलसे दूसरा आदमी पढ़ायेगा। जा, मन लगाकर पढ़ जाकर, हरामजादा, बदमाश कहींका!"

हरी सूखे मुरझाये हुए मुँहसे माकी ओर एक बार देखकर धीरेसे चला गया।

गिरीशने स्त्रीकी तरफ देखकर कहा, "देखी आजकालके मास्टरोंकी हालत ? सिर्फ रुपया लेंगे, और धोखा देंगे। रमेशसे कह देना, कल ही इस प्राण-बाबूको जवाब देकर दूसरा मास्टर रख लिया जाय। उसने सोच रक्खा होगा, मेरी आँखोंमें धूल झोंककर बच जायगा!"

सिद्धेस्वरीने कोई बात नहीं कही। वे पतिके मुँहकी तरफ सिर्फ एक क्रोध-भरी तीव्र दृष्टि फेंककर चुपचाप बाहर चली गईं।

यह सोचकर कि मैंने अपना कर्त्तव्य सुचारु-रूपसे समाप्त कर दिया है, प्रसन्न चित्तसे उसी वक्त गिरीश कागजातोंमें फिर मशगूल हो गये।

रुपया नामक चीज दुनियामें आवश्यकीय वस्तु है, यह बात सिद्धेस्वरी जानती न हों, सो बात नहीं। मगर, उस तरफ इतने दिनोंसे उनका कोई ध्यान ही नहीं था। लेकिन लोभ भी एक छूतकी बीमारी है। नयनताराकी छूत लग जानेसे सिद्धेस्वरीके शरीर और मनमें भी यह बीमारी धीरे धीरे व्याप्त होती जा रही थी।

आज ही खाने-पीनेके बाद शैलजा इस घरसे विदा लेगी, इस अफवाहसे सिद्धेस्वरीका कलेजा फाड़कर एक लम्बी रुलाई बाहर निकलनेके लिए उमड़ी आ रही थी। वे उसे किसी तरह रोककर बुखारके बहानेसे बिस्तरपर पड़ी थीं। नयनतारा आकर उनके पास बैठ गई। देहपर हाथ लगाकर बुखारकी गरमीका अनुभव करके उसने आशंका प्रकट की और डाक्टर बुलाना चाहिए या नहीं, सो पूछा।

सिद्धेस्वरीने दूसरी ओर मुँह फेरकर संक्षेपमें कहा, "नहीं।"

नयनताराने नाराजीका कारण ताड़कर उचित दवा दी। जरा देर चुप रह-कर उसने धीरेसे कहा, "इसीसे मैं सोच रही थी जीजी, लोग कैसे अपने पाह

इतने रुपये इकट्ठे कर लेते हैं। अपने मुहल्लेके यदुनाथ बाबू, गोपाल बाबू, हरनारायण बाबू, इनमेंसे किसीका अपने जेठजीसे आधा भी काम नहीं चलता। फिर भी, इनमेंसे किसीके पास लाख रुपयेसे कम बैंकमें जमा नहीं होंगे। उनकी स्त्रियोंके हाथमें भी दस-बीस हजारसे कम पूँजी न होगी।"

सिद्धेश्वरीने कुछ आकृष्ट होकर कहा, "कैसे जाना तुमने मँझली बहू?"

नयनताराने कहा, "उन्होंने बैंकके साहबसे पूछा था। वे सब इनके मित्र हैं न! कल गोपाल-बाबूकी स्त्रीने मेरी बातपर अविश्वास करके कहा था, ऐसा कहीं हो सकता है मँझली बहू कि तुम्हारी जीजीके पासमें रुपये न हों? कुछ नहीं, तो भी—"

सिद्धेश्वरी अपना बुखार भूलकर चटसे उठकर बैठ गईं और नयनताराके सामने चाबीका गुच्छा झन्न-से फेंककर बोलीं, "बकस-अकस सब कुछ अपने हाथसे खोलके देख लो न मँझली बहू,—घर-गिरस्तीके खर्चके सिवा कहीं कुछ भी अगर छिपा-इपा एक पैसा भी दीख पड़े! जो कुछ करती थी सो छोटी बहू। मुझे क्या एक बात भी कहनेका मौका था? ऐसे मालिकके हाथ पड़ी हूँ, मँझली बहू, कि कभी एक पैसेका भी मुँह न देख सकी! वैसी ही सजा भी पाई है। अब वह सर्वस्व लिये चली जा रही है,—क्या कर सकती हूँ उसका? मेरे हाथमें अगर रुपया होता तो सब घरहीमें रहता कि इस तरह पानीमें जाता,—तुम्हीं बताओ न मँझली बहू?"

मँझली बहूने सिर हिलाते हुए, "सो तो ठीक ही है, जीजी।"

सिद्धेश्वरीका मन शैलजाके विरुद्ध फिर कठोर हो उठा। इतने दिन इन्होंने खुद ही शैलजाको पाल-पोसकर बड़ा किया, अपने सन्दूककी चाबी उसको सौंपकर खुद छोटी बनकर और गृहस्थीमें उसे बड़ा बना कर रक्खा,—इस बातको अब वे बिलकुल भूल ही गईं। बोलीं, "एक आदमी कमानेवाला है, और इतनी बड़ी गृहस्थी उसके सरपर है। उसको भी दोष कैसे दिया जाय, सो बताओ?"

नयनताराने अनुमोदन करते हुए कहा, "सो तो सभी देख रहे हैं, जीजी।"

जरा चुप रहकर नयनतारा धीरे धीरे कहने लगी, "हमारे गाँवके एक नन्दलाल हैं जो आफिसमें क्लर्कीका काम करते थे। छोटे भाईको आदमी बनाने और पढ़ाने लिखानेमें,—उसके लड़के-बालोंकी ब्याह-शादियोंमें,—खर्च करके अपने पास एक कानी कौड़ी भी उन्होंने नहीं रक्खी,—अगर बड़ी बहू कुछ

कहती तो उसे डाँटकर कहते—"

सिद्धेश्वरी बीचमें ही टोककर बोल उठीं, "ठीक मेरी ही दशा थी, और क्या!"

नयनतारा कहने लगी, "सो तो थी ही। बड़ी बहूको डाँट बताकर नन्दबाबू कहते, 'तुम्हें फिकर किस बातकी है? तुम्हारा नरेन तो है। उसे खूब पढ़ा-लिखाकर वकील कर दिया है। बुढ़ापेमें वही हम लोगोंको देखेगा-भालेगा। मनमें सोच लो, वह तुम्हारा देवर नहीं लड़का है।' पर ऐसा कलजुग है, जीजी, उसी नन्दलालकी आँखोंमें मोतियाबिन्द हो जानेसे जब वह अन्धा हो गया और नौकरी चली गई तब, नरेन वकीलने,—खास सहोदर भाई होकर भी, भइयाको रुपये उधार देकर सूद और मूल मिलाकर उसके पैतृक मकानका हिस्सा तक नीलाम कराके ले लिया। अब वह बेचारा भीख माँगके पेट भरता है और रो रो कर कहता है कि स्त्रीकी बात न माननेसे ही उसकी ऐसी हालत हुई है,—और वह कोई चचेरा सौतेला भाई नहीं, खास अपना मा-जाया भाई था।"

सिद्धेश्वरी मन ही मन सिहर उठीं, बोलीं, "कह क्या रही हो मँझली बहू?"

नयनताराने कहा, "झूठ नहीं कहती जीजी, उस बातको देश-भरके लोग जानते हैं।"

सिद्धेश्वरी फिर कुछ नहीं बोलीं। इससे पहले एक बार उनका मन हुआ था कि शैलजाको बुलाकर जानेकी मनाई कर दें; और बार बार इस बातको भी वह तरह तरहसे सोच रही थीं कि क्या करनेसे उसका जाना रुक सकता है; मगर अब नन्दलालकी दुरवस्थाके इतिहाससे उनका अन्तःकरण एकबारगी विकल हो उठा। शैलजाको रोकनेका उन्हें उत्साह ही नहीं रहा।

गिरीश उस समय अदालत जानेकी तैयारी करके जा ही रहे थे कि रमेशने आकर कहा, "मैं देशके घरमें जाकर रहनेकी सोच रहा हूँ।"

"क्यों?"

रमेशने कहा, "कोई नहीं रहेगा तो घर-द्वार टूट फूट कर खंडहर हो जायगा और जमीन-जायदाद तालाब वगैरह भी खराब हो जायँगे। यहाँ मेरा कोई काम भी नहीं है, इसीसे कह रहा हूँ।"

"अच्छी बात है! अच्छी बात है!" कहकर गिरीशने प्रसन्न होकर सम्मति दे दी।

छोटे भाईकी प्रार्थनाके भीतर कितना गृह-विच्छेद और कितना मनोमालिन्य

छिपा हुआ है इसकी उस भले आदमीको कुछ भी ख़बर न थी। उनके अदालत चले जानेके बाद ही शैलजाने बड़ी जिठानीके कमरेकी चौखटके पास जाकर उन्हें घुटने टेककर प्रणाम किया और सिर्फ एक मामूली-सा ट्रंक-मात्र साथ लेकर वह दोनों लड़कोंको पकड़के घरसे बाहर निकल गई।

सिद्धेश्वरी बिस्तरपर काठ होकर पड़ी रही, और नयनतारा अपने ऊपरके मंजिलके कमरेमें जाकर खिड़की खोलके देखने लगी।



दो बड़े बड़े पलंग एक साथ मिलाकर सिद्धेश्वरीके बिछौने होते थे। इतने बड़े बिस्तरपर भी उन्हें स्थानाभावके कारण संकुचित होकर कष्टके साथ रात बितानी पड़ती थी। इस विषयको लेकर वे नाराज होनेसे भी न चूकतीं थीं, और घरके सब लड़कोंको एकसंग अपने पास सुलाये बग़ैर भी उन्हें चैन न पड़ता था। सारी रात उन्हें सावधान रहना पड़ता था और बहुत दफे उठना पड़ता था। किसी दिन भी स्वस्थ और निश्चित मनसे वे नहीं सो सकती थीं। साथ ही इन सब उपद्रवोंसे बचानेका अधिकार भी वे शैलजा या और किसीको न देती थीं। उनकी ऐसी बीमारीकी हालतमें भी किसी लड़केके लिए ताईजीके बिछौनेके सिवा और कहीं सोनेका स्थान नहीं था। कन्हाईका सोना खराब है, उसके लिए इतनी जगह चाहिए; छुट्टन अक्सर एक कसूर कर डालता है, उसके लिए मोमजामा बिछानेकी व्यवस्था थी; विपिन सोतेमें चक्केकी तरह घूमा करता है, उसके लिए दूसरे तरहकी व्यवस्था थी; पटलको ढाई-तीन बजेके वक्त भूख लगा करती है, उसके लिए सिरहानेके पास खानेकी तैयारी रखनी पड़ती थी; खेंदीकी छातीपर कन्हाईने पैर तो नहीं रक्खे हैं, पटलकी नाक विपिनके घुटनोंके तले दब तो नहीं गई है;—यह सब देखते देखते और बकझक करते करते ही उनकी रात बीतती थी। आज सोते समय बिछौनेपर कितनी जगह खाली पड़ी रहेगी, शैलजाके जाते समय सिद्धेश्वरीको इस बातका होश नहीं था। नयनताराके करोड़ों सिरकी कसमें दिलानेपर वे रातको नीचेके कमरेसे खा-पीकर ऊपर आ रही थीं, सहसा शैलजाके कमरेकी तरफ निगाह पड़ते ही उन्हें ऐसा मालूम हुआ जैसे उनकी छातीपर किसीने मुद्गरोंसे मारा हो। कमरेके भीतर बत्ती नहीं जली थी, दरवाजे दोनों खुले पड़े थे, सिद्धेश्वरी मुँह फेरकर जल्दीसे अपने कमरेमें आ

पहुँचीं, बिछौनेकी तरफ देखा,— थोड़ी-सी जगहमें विपिन और छुट्टन सो रहे हैं, बाकी विस्तर तप्त मरुभूमिकी तरह खाँव खाँव कर रहा है। अपने थोड़ेसे निर्दिष्ट स्थानमें वे आँख मीचकर चुपचाप पड़ रहीं, परन्तु उन मिची हुई आँखोंके किनारेसे जो गरम गरम आँसू बहते रहे, उनसे तकिया भींजने लगा। घरके लड़कोंके खाने पीनेके मामलेमें उन्हें हमेशासे वहम रहता था। इस विषयमें अपने सिवा वे और किसीका भी विश्वास न करती थीं। उनका यह बँधा हुआ संस्कार था कि खुद उनके बगैर मौजूद रहे लड़के तरह तरहसे बहाना बनाके कम खाते हैं, और उनके सिवा और किसीमें यह बूता नहीं कि कोई इस बातको पकड़ सके। दैववश अगर उनकी अनुपस्थितिमें किसी लड़केने खाना खा लिया,—वे स्वयं खाते न देख सकीं, तो उससे जिरह करके, पेटपर हाथ लगाकर अनुभव करके नाना प्रकारसे साबित करनेकी कोशिश किया करतीं कि उसने हरगिज पूरी खुराक नहीं खाई है और इस गल्तीके सुधारके लिए उस अभागे लड़केको उसी वक्त उनकी आँखोंके सामने खड़े होकर एक कटोरा दूध पीना पड़ता। शैलजा लड़कोंकी तरफसे कभी कभी लड़ जाती थी और जबरदस्ती खिलानेकी हानियोंपर बहस करने लगती थी। परन्तु सिद्धेश्वरीको भीतरसे गुस्सा दिला देनेके सिवा उसका और कोई फल न होता था। सिद्धेश्वरी जब कभी किसी लड़केकी तरफ देखतीं, तो उन्हें यही मालूम होता कि लड़का लटा जा रहा है! इन सब बातोंसे उनकी उत्कंठा और अशान्तिका अन्त न था। आज बिस्तरपर पड़े पड़े उनको रह रह कर यही खयाल आने लगा कि देशके घरमें अनेक प्रकारकी विशृंखलताओंमें शायद कन्हाईका पेट नहीं भरा, और पटल तो जरूर ही बिना खाये-पीये सो गया है। शायद उसे जगाकर कोई खिलायेगा भी नहीं, शायद बेचारा रात-भर भूखा तड़फड़ाता रहेगा। कल्पनामें जैसे जैसे उन्हें ये सब दुर्घटनाएँ स्पष्ट दिखाई देने लगीं, वैसे वैसे क्रोध, दुःख और वेदनासे उनकी छाती फटने लगी। पासके कमरेमें गिरीश मजेसे सो रहे थे। जब उनसे सहा न गया, तब बहुत रात बीते वे पतिके बिस्तरके पास जा पहुँचीं। देहपर हाथ लगाकर उन्होंने जगाकर पूछा, ' अच्छा, मान लिया कि पटलको शैल ले जा सकती है, लेकिन, कन्हाई तो उसके पेटका लड़का नहीं, तब उसपर उसका क्या जोर है? "

गिरीशने नींदकी ही झोंकमें जवाब दिया, " कुछ नहीं। "

सिद्धेश्वरी आश्वान्वित होकर पलङ्गके एक किनारे बैठ गई, बोलीं, " ऐसी

दशामें अगर हम नालिश कर दें तो उसे सजा हो सकती है ? हो सकती है या नहीं, ठीक बताओ ?"

गिरीशने बिना किसी सन्देहके कह दिया, "जरूर हो सकती है।"

सिद्धेश्वरी आशा और आनन्दसे उत्तेजित हो उठीं। फिर पूछा, "सो तो हुआ; पर पटलके बारेमें तो सोचो,—उसे तो मैंने ही पाल-पोसकर बड़ा किया है। हाकिमको अगर समझाकर कहा जाय कि मेरे बिना वह नहीं रह सकता, और ऐसा भी हो सकता है कि मेरी याद कर करके वह सख्त बीमार पड़ जाय,—तो हाकिम क्या यह राय नहीं देंगे कि वह अपनी ताईके पास ही रहे ?—वाह ! तुम तो नाक बजाने लगे ! मेरी बात शायद सुनी ही नहीं !" यह कहकर सिद्धेश्वरीने पतिके पैर पकड़कर जोरसे हिला दिये।

गिरीशने जागकर कहा, "हरगिज नहीं।"

सिद्धेश्वरी गुस्सेमें आकर कहने लगीं, "क्यों नहीं ? मा होनेसे ही वह लड़केको मार डालेगी, महारानी विक्टोरियाका कोई ऐसा हुकम नहीं है ! कल ही अगर मँझले देवरजीसे वकीलकी चिट्ठी दिलवा दूँ तो फिर क्या हो ?" यह कहकर सिद्धेश्वरी उत्तरकी आशामें कुछ देर खड़ी रहकर प्रत्युत्तरमें नाक बजानेकी आवाज सुनकर गुस्सा होकर उठके चल दीं।

रात-भर उन्हें जरा भी नींद नहीं आई। कब सवेरा हो और कब हरीशके जरिये वकीलकी चिट्ठी भेजकर लड़केका दावा करें,—चिट्ठी पाकर किस तरह डरकर और पछताकर कन्हाई और पटलको वे लोग यहाँ पहुँचा जायँ, इन्हीं सब आशाओं और आकाश-कुसुमोंकी कल्पनाओंने उन्हें रात-भर जगाये रखा।

सवेरा होते न होते उन्होंने हरीशके दरवाजेका कड़ा हिलाकर पुकारा, "मँझले लालाजी, उठो ?"

हरीशने घबराकर दरवाजा खोल दिया, और आश्चर्यसे देखा।

सिद्धेश्वरीने कहा, "देरी करनेसे काम नहीं चलेगा, अभी तुरत छोटे लाला-जीके नाम वकीलकी चिट्ठी लिखकर दरबानके हाथ भिजवा देनी होगी। तुम खूब अच्छी तरह लिख दो कि चौबीस घंटेके अन्दर जवाब न मिला तो नालिश कर दी जायगी।"

हरीशको इस विषयमें उत्तेजित करना व्यर्थ था। उसने उसी वक्त राजी होकर धीमे गलेसे पूछा, "बात क्या है भाभीजी ? बैठ जाओ, बैठ जाओ—

क्या क्या ले गया है? दावा जरा कुछ ज्यादाका होना चाहिए, समझीं कि नहीं?"

सिद्धेश्वरीने खाटपर आसन ग्रहण करके दोनों आँखें फाड़कर अपना दावा विस्तारसे कह सुनाया।

सुनकर हरीशका हर्षोज्ज्वल चेहरा स्याह पड़ गया। बोला, "तुम क्या पागल हो गई हो, भाभी? मैं समझ बैठा कि और कोई बात होगी। अपने लड़कोंको वे लोग लिवा ले गये हैं, इसमें तुम क्या कर सकती हो?"

सिद्धेश्वरीको विश्वास नहीं हुआ। कहने लगी, "तुम्हारे भइयाने तो कहा है कि नालिश करनेसे उनको सजा हो जायगी।"

हरीशने कहा, "भइया ऐसी बात कह ही नहीं सकते। तुमसे मज़ाक किया होगा।"

सिद्धेश्वरीने गुस्सा होकर कहा, "इतनी उमर हो चुकी, हँसी-मजाक किसे कहते हैं, सो क्या मैं समझती नहीं लालाजी? तुम्हारे ही मनमें जब नहीं है कि लड़कोंको मैं अपने पास रक्खूँ, तब साफ साफ क्यों नहीं कहते?"

हरीशन लज्जित होकर अनेक प्रकारसे समझानेकी कोशिश की कि इस दावेको अदालत मंजूर नहीं करेगी। बल्कि इससे और कोई नया दावा करके उन्हें काबू किया जा सकता है। हम लोगोंके लिए अब वही करना उचित है।

सिद्धेश्वरी मारे क्रोधके उठके खड़ी हो गई और बोलीं, "तुम अपना 'उचित' अपने ही पास घर रक्खो लालाजी, मेरे तीन पन तो बीत चुके, एक रह गया है,—सो इसके लिए झूठा दवा-आवा नहीं कर सकती। परलोकमें मेरी तरफसे तुम तो जवाब देने जाओगे नहीं। तुम न लिखो, मैं मनीको भेज कर नगेन बाबूसे लिखवा मँगाती हूँ।" इतना कहकर वे उठके चल दीं।

दूसरे दिन सवेरेसे ही किसी एक बाजार-खर्चके हिसाबके बारेमें सिद्धेश्वरी घरके मुनीम गणेश चक्रवर्तीसे बहस कर रही थीं। वह बेचारा नाना प्रकारसे समझानेकी कोशिश कर रहा था कि बारह गंडे रुपयोंपर और भी दो रुपये खर्च हो जानेसे पूरे पचास रुपये खर्च हो गये हैं। मगर इस कार्यमें गृहिणी नवीन दीक्षित हुई थीं। उनकी नूतन धारणा हो गई थी कि उन्हें बेवकूफ समझकर लोग रुपये चुराते हैं, लिहाजा गणेशने भी रुपये चुराये हैं, इसमें कोई शक नहीं! वे बहस कर रही थीं—

"पचास रुपये तो एक आँचल-भर रुपये होते हैं, गणेश। मैं पढ़ी-लिखी

नहीं, सो इसीलिए क्या तुम मुझे ऐसे ही समझा दोगे कि बारह गंडे रुपयोंसे सिर्फ दो रुपये और अधिक खर्च हुए सो पचासके पचास रुपये सब खर्च हो गये ?—और कुछ भी नहीं बचे ? मैं क्या इतनी बेवकूफ हूँ ?"

गणेशने व्याकुल होकर कहा, "माजी, नीलाको बुलाकर न हो तो..."

"नीलाको बुलाकर हिसाब समझना होगा ? वह मुझसे ज्यादा समझेगी ? नहीं गणेश, यह सब अच्छी बात नहीं है। शैल नहीं है इसीसे जैसा जीमें आयेगा, तुम लोग हिसाब दे दोगे सो नहीं हो सकता, कहे देती हूँ। न वह जाती, न मुझे इतना झंझट उठाना पड़ता। मुँहजलीको दस सालकी उम्रमें बहू बनाके घर लाई, पाल-पोसकर इतनी बड़ी की, अब वह तेज दिखाकर घरके दो दो लड़कोंको साथ लेकर बाहर निकल गई। सो चली न जाय, मैं भी खबर रख रही हूँ। कन्हाई-पटलकी किसी दिन जरा भी तबीयत खराब सुनी मैंने कि फिर देखूँगी कि कैसे वह उन्हें रखती है !—तुम अभी जाओ, दोपहरको आकर ठीक याद करके हिसाब बता जाना कि इतने रुपये कहाँ गये,—उनका क्या किया ?" इतना कहकर गणेशको उन्होंने बिदा कर दिया।

वह बेचारा हतबुद्धि-सा होकर बाहर चला गया।

मँझली बहूने आकर कहा, "जीजी, कह नहीं सकती, पर मैंने भी गृहस्थी चलाई है, कौड़ी-कौड़ीका सारा हिसाब रक्खा है। छोटी बहू नहीं है, इसलिए तुम इतना संकट उठाओगी और मैं बैठी बैठी देखा करूँगी, यह ठीक नहीं। मेरे सामने चालाकी करके हिसाबमें गड़बड़ी करनेकी किसीमें हिम्मत नहीं।"

सिद्धेश्वरीने कहा, "यह तो अच्छी बात है, मँझली बहू। मुझे इतनी कमजोरीकी हालतमें क्या इतना झंझट उठाना अच्छा लगता है ! शैल थी—जहाँका जितना रुपया आता था, उसका हिसाब रखना, खर्च करना, बैंकमें भिजवाना, सब-कुछ वही किया करती थी। यह सब काम क्या मुझसे हो सकता है ! अच्छी बात है, अबसे तुम्हीं सब किया करो, मँझली बहू।" इतना कहा लेकिन चाबी उन्होंने अपने ही आँचलमें बाँध ली।

दिन बीतने लगे। नयनतारा हजार तरकीबें करके भी लोहेके सन्दूककी चाबी अपने आँचलमें न बाँध सकी। नयनतारा अत्यन्त कुशल और चतुर है, बहुत कुछ आगेकी सोचकर काम कर सकती है। पर, इस मामलेमें उससे एक जबरदस्त गलती हो गई। उसने अपने स्वार्थके लिए एक निरीह सीधे-सादे

आदमीके मनमें सन्देहका ऐसा बीज बो दिया जिसके पकनेका समय आनेपर फल-भोगसे वह अपनेको भी न बचा सकी। वह जैसे अपने शत्रु-पक्षपर सन्देह करना सीख जाता है, वैसे ही मित्र-पक्षसे भी उसका विश्वास उठः जाता है; लिहाजा सिद्धेश्वरी जिस क्षण छोटी-बहूपरसे विश्वास खो बैठीं, उसी क्षणसे मँझली बहूपर भी सन्देह करना सीख गईं।

९

किसी कमीके लिए—फिर चाहे वह कितनी ही बड़ी या जबरदस्त क्यों न हो—आदमी हमेशा शोक नहीं कर सकता। सिद्धेश्वरीके लिए भी शय्याकी शून्यता क्रमशः पूर्ण होने लगी। शैलजाके कमरेकी तरफ पहले उनसे पाँव भी न रक्खा जाता था; पर अब उस बरामदेको वे आसानीसे पार कर जाती हैं,—उसका खयाल भी नहीं आता। कन्हाई और पटलकी विविध उपायोंसे खबर पानेके लिए दिन-रात उत्कंठित रहा करती थीं,—अब उस उत्कंठा-मेंसे आधी दूर हो चुकी है। इस तरह सुख-दुखमें एक साल बीत गया।

उस दिन सहसा सिद्धेश्वरीके कानमें भनक पड़ी कि गाँवकी जमीन-जायदादके बारेमें छोटे देवरके साथ उन लोगोंका मुकदमा चल रहा है और मुकदमा चला रहे हैं हरीश खुद। दीवानीमें तो मामला चल ही रहा है,—इस बीचमें दो एक फौजदारी मामले भी हो गये हैं। खबर सुनकर सिद्धेश्वरी डर और फिकरके मारे मर गईं।

पतिसे पूरा कुतूहल मिटाने लायक समाचार मिलना मुश्किल जानकर वे शामके वक्त हरीशके पास पहुँचीं। उनसे पूछा, “क्यों लालाजी, छोटे लालाजी तुम्हारे भइयासे मुकदमा लड़ रहे हैं?”

हरीशने जरा ऊँचे दर्जेकी हँसी हँसकर कहा, “हो तो यही रहा है भाभीजी!”

सिद्धेश्वरीका चेहरा फक पड़ गया, बोलीं, “मुझे तो विश्वास नहीं होता लालाजी, अब भी तो चन्द्र-सूर्य निकलते हैं!”

नयनतारा खाटके एक किनारे बैठी खँदीको सुला रही थी, मृदु कण्ठसे कह उठी, “हो तो निकलते ही हैं, जीजी। और इन्हीं छोटे देवरको तुम हजार हजार रुपये रोजगारके लिए दिया करतीं थीं। वे सब तब तो गये नहीं, अब जा रहे हैं।

सिद्धेश्वरीने आश्चर्यसे कुछ देर तक मौन रहकर पूछा, "मुकदमा क्यों किया जा रहा है?"

हरीशने कहा, "क्यों? देखा कि मुकदमा वगैर किये कोई चारा ही नहीं। अपने गाँवकी सम्पत्ति ही तो असली सम्पत्ति है। देखा, कि हमारे वाद अपने मनी-हरी-विपिन-छुट्टन कट्टा-भर जमीन जायदाद तो पानेसे रहे,—वहाँके घर तकमें शायद घुसने नहीं पायेंगे। समझ लो न भाभी, देशमें जो कुछ है उस सवपर तो वह कब्जा करके वैठ ही गया। मालगुजारी वगैरह वसूल कर रहा है, खाता पीता है,—एक पैसा तक देनेका नाम नहीं। जमीन-जायदाद जो कुछ है सो सव भइयाकी ही वनाई तो है, फिर भी, उनकी चिट्ठीका जवाव तक उसने नहीं दिया,—ऐसा नमकहराम है रमेश। मैं भी उस मकानसे उसे निकालकर ही छोड़ूँगा, यह मेरी प्रतिज्ञा है।"

सिद्धेश्वरी फिर कुछ देर चुप रहकर वोलीं, "अच्छा, वे भी वाल-वच्चे लेकर कहाँ जावें?"

हरीशने कहा, "इस वातसे तो हम लोगोंको कोई मतलव नहीं, भाभी।"

सिद्धेश्वरीने पूछा, "तुम्हारे भइयाने क्या कहा है?"

हरीशने कहा, "भइया कहीं अगर ऐसे होते तो फिर फिकर ही क्या थी भाभी! जव आँखोंमें उँगली देकर दिखा दिया कि रमेश उन्हींका खा-पीकर, उन्हींके रुपयोंसे उन्हींकी जमीन-जायदादको लेकर फसाद कर रहा है, तव कहीं उन्होंने अपनी राय दी। फौजदारीमें रमेश तो भइयाको ही फँसानेकी कोशिशमें था। वड़ी मुश्किलसे उन्हें वचा पाया है।"

नयनताराने फुसफुसाते हुए कहा, "अच्छा मान लो कि छोटे लालाजी ही कसूरवार हैं,—पर मैं तो सिर्फ यह सोचती हूँ जीजी, कि छोटी वहूने कैसे इस मामलेमें राय दे दी? हम लोग सव दुष्ट हो सकते हैं, वुरे हो सकते हैं, पर वह तो अपने वड़े जेठजीको जानती है। उन्हें जेल भिजवानेसे उसे क्या सुख मिल जाता?"

सिद्धेश्वरी वारम्वार ऊपरसे नीचेतक सिहर उठीं। फिर उन्होंने एक वात भी नहीं की और उठके वाहर चल दीं।

वहाँसे चलकर वे पतिके कमरेमें गईं। गिरीश वाकायदा काममें मशगूल थे। मुँह उठाकर स्त्रीके चेहरेकी तरफ देखते ही आज उसकी अस्वाभाविक पाण्डुरता

उनकी निगाहमें भी पड़ गई। हाथके कागजात रखकर उन्होंने कहा, " आज कब बुखार आया ? "

सिद्धेश्वरीने अभिमान-भरे स्वरमें कहा, " गनीमत है, पूछा तो सही ! "

गिरीशने व्यस्त होकर कहा, " खूब ! पूछता नहीं तो क्या करता हूँ ? परसों ही तो मनिको बुलाकर पूछा था कि अपनी माको दवा-अवा देता है ? सो आज कलके लड़के ऐसे हो गये हैं कि मा-बाप तकको नहीं मानते। "

सिद्धेश्वरी नाराज होकर बोलीं, " बुढ़ापेमें झूठ तो मत बोला करो। पन्द्रह दिन हो गये मनि अपनी बुआके यहाँ इलाहाबाद गया है, और तुमने उससे पूछ लिया परसों ! कभी जो बात की नहीं, सो क्या अब करोगे ? खैर जाने दो, इसके लिए नहीं आई। मैं आई हूँ यह जाननेके लिए कि मामला क्या है ? छोटे लालाजीसे मुकदमा किस बातका चल रहा है ? "

गिरीश बड़े ज़ोरसे खफा हो पड़े, " वह तो चोर है, चोर ! एकदम कंगाल हो गया है ! जमीन-जायदाद सब नष्ट कर डाली है। उसे निकाल-बाहर किये बिना, देखता हूँ कि, अपना कल्याण नहीं,—सब बरबाद करके सत्यानाश कर डाला है। "

सिद्धेश्वरीने प्रश्न किया, " अच्छा सो तो कर दिया है, पर मामले-मुकद्दमें तो ऐसे होते नहीं, खरचको तो रुपया चाहिए ! छोटे लालाजीको रुपया मिल कहाँसे रहा है ? "

हरीश उतरकर लड़कोंके पढ़नेके कमरेमें जा रहा था, भइयाके उच्च कंठसे आकृष्ट होकर धीरेसे उनके कमरेमें घुस आया। उसीने जवाब दिया, " रुपयेकी बात तो अभी तुरत मँझली बहूने बता न दी, भाभी ! पाटकी दलालीके बहाने भइयासे चार हजार रुपये लिए थे, वे तो पासमें हैं ही; उनके सिवा छोटी बहूके हाथमें ही तो अब तक रुपये पैसे सब रहते थे,—समझ देखो न ! "

गिरीश फिर उत्तेजित हो उठा, " मेरा सर्वस्व ले गया है—क्या कुछ बाकी छोड़ा है, हरीश ! वह तो एकदम हिताहितज्ञानशून्य नंगा हो गया है। शुक्रवारके दिन कोर्टमें आकर बोला,—घर-द्वार सबकी मरम्मत कराना है, पाँच सौ रुपये चाहिए ! "

हरीश दंग रह गया, बोला, " कहते क्या हो भइया ? हिम्मत तो कम नहीं ! "

गिरीशने कहा, " हिम्मतकी न पूछो। एकदम दर्खा-चाँठी पर्द पेश कर दी,

यहाँ मरम्मत कराना है, वहाँ गँथनी कराना है, इसे विना वदले काम नही चलनेका, उसे विना बनवाये गुजर ही नहीं। सिर्फ इतना ही नहीं,—घर-गिरस्तीमें तंगी है, जाड़ेके कपड़े खरीदने हैं, धान और आलू खरीदकर रखने हैं,—इसी तरहकी हजारों जरूरतें दिखाकर और भी तीन सौ रुपयेकी जरूरत बताई।"

हरीशने अपने असह्य क्रोधको किसी तरह दबाते हुए कहा; "निर्लज्ज कहींका!—फिर उसके वाद?"

गिरीशने कहा, "ठीक कहा तुमने, ठीक ऐसा ही है। अभागेके हया-शरम जो एक बारगी रही ही नहीं,—जरा भी नहीं।—सब मिलाकर आठ सौ रुपये ले लिये, तब कहीं पीछा छोड़ा।"

"ले गया? आपने दे दिये?"

गिरीशने कहा, "नहीं तो क्या वह छोड़ देता? लेकर ही तो टला!"

हरीशका सारा चेहरा पहले तो आग-सा हो उठा, फिर दूसरे ही क्षण छायाकी तरह हो गया। वह स्तब्ध होकर कुछ देर बैठा रहा, फिर बोला, "तो फिर मामला-मुकदमा करनेसे फायदा क्या है भइया?"

गिरीशने उसी क्षण कहा "कुछ नहीं, कुछ नहीं! अपनी गिरस्ती भी चला सके, अभागेमें इतनी भी शक्ति नहीं है,—ऐसा मोंदू है। दिन-रात ताश-चौसर खेलना, खाना-पीना, और सोना,—बस। आदमी जैसे शिवकी मूर्ति स्थापना करते हैं न, हम लोगोंका भी वही हुआ है,—समझे न हरीश!" फिर अपनी रसिकतासे आप ही मस्त होकर हो-हो करके उन्होंने हँसके घर भर दिया!"

हरीशसे और न सहा गया, वह उठके चुपचाप चल दिया। दाँत पीसता हुआ कहता गया, "अच्छा, मैं अकेला ही देखताहूँ।"

× × × ×

माघ महीनेकी सुदी सप्तमीको मुकदमेका दिन था। उसके दो ही दिन पहले बिरादरीकी एक कन्याके व्याहके मौकेपर कन्याके पिताने गिरीशको आ पकड़ा, "भाई साहब, आप मौजूद रहकर मेरी लड़कीका व्याह करा दीजिए, मेरी यह बड़ी इच्छा है। आपको कमसे कम एक दिनके लिए देश जाना ही होगा।"

'ना' शब्द तो गिरीशके मुँहसे निकल ही कैसे सकता था! वे उसी वक्त राजी होकर बोले, "जाऊँगा क्यों नहीं भाई साहब, जरूर जाऊँगा।"

कन्याका पिता निश्चिन्त होकर चला गया। मगर, इस 'जरूर' शब्दके वास्तविक अर्थ यथासमय क्या होंगे, इस बातको सबसे ज्यादा समझती थीं

सिद्धेश्वरी। लिहाजा वचन देनेकी बातको गिरीश भले ही भूल गये हों पर वे नहीं भूलीं।

उस तारीखको सवेरे गिरीश मानों आसमानसे गिरकर बोले, "कहती क्या हो! आज तो मेरा वह जयपुरका मुक—"

"नहीं, सो हो नहीं सकता। तुम्हें जाना ही होगा। वकील होनेके बादसे झूठ ही तो बोलते आ रहे हो,—आज एक बात तो रख दो। परलोकका डर क्या तुम्हें जरा भी नहीं है?"

गिरीशने कुण्ठित होकर कहा, "परलोक! सो ठीक है,—पर—"

"नहीं, इस तरह काम नहीं चलेगा, तुम्हें जाना ही होगा। जाओ।" अतएव गिरीशको देश जाना ही पड़ा।

जाते समय सिद्धेश्वरीने उनसे अत्यन्त कोमल स्वरमें कहा, "दोनों लड़कोंको—" और यह कहकर वे सहसा रो दीं।

"अच्छा अच्छा, सो देखा जायगा।" कहते हुए गिरीश घरसे चल दिये। परन्तु, देखा क्या जायगा, सो पति-पत्नीमेंसे कोई भी न समझा। नयनताराने सिद्धेश्वरीको इशारा करके एकान्तमें बुलाकर कहा, "उस घरमें कुछ खाने-पीनेकी मनाई क्यों नहीं कर दी जेठजीसे?"

सिद्धेश्वरीने आश्चर्यसे पूछा, "क्यों?"

नयनताराने चेहरेको विकृत-गम्भीर बनाकर कहा, "कौन जाने जीजी, कुछ कहा थोड़े ही जा सकता है!"

सिद्धेश्वरीकी आँखोंसे तब भी आँसू बह रहे थे। आँचलसे उन्हें पोंछकर वे जरा चुप रहके बोलीं, "सो तुम कर सकती हो मँझली बहू। शैलका गला काटकर फेंक दिया जाय तो भी वह ऐसा नहीं कर सकेगी।" यह कहकर वे जल्दीसे चली गईं।

दो-दिन पहलेसे ही मुकदमेकी पैरवीके लिए जिलेको जानेके लिए रमेश तैयारी कर रहा था। शैल वहाँ नहीं थी। वह ठाकुरद्वारेमें, देहसे अन्तिम गहना खोलकर, घुटने टेके, गलेमें आँचल डालके, हाथ जोड़कर मन ही मन कह रही थी, "भगवन्, अब तो और कुछ बचा नहीं, अब जैसे भी बने, मुझे 'निष्कृति' दो। मेरे बच्चे खाये बगैर भूखों मर रहे हैं, मेरे पति दुश्चिन्तासे सूखके काँटा हो गये हैं, हड्डी हड्डी निकल आई है—"

"ओ रे कन्हाई,—ओ रे पटल—"

शैलजा चौंक उठी,—यह तो उसके जेठजीकी आवाज है! खिड़कीकी संधमेंसे देखा, वे ही तो हैं। सफेद बाल, सफेद-काली मूँछें, वही शान्त स्निग्ध सौम्य मूर्ति!—हमेशासे जैसी देखती आई है, ठीक वैसी ही। कहीं भी किसी अंगमें जैसे जरा भी परिवर्तन घटित नहीं हुआ। कन्हाई पढ़ना छोड़कर दौड़ा आया और उसने पाँव छुए। पटल खेल छोड़कर हाँफता हुआ आ पहुँचा उसे उन्होंने गोदमें उठा लिया।

रमेशने तुरत भीतरसे निकलकर प्रणाम किया, पैरोंकी धूल ली।

गिरीशने कहा, "अब इतने वक्त कहाँ जाना होगा?"

रमेशने कुण्ठित और अस्पष्ट स्वरमें कहा, "जिलेको—"

गिरीश पलक मारते ही बारूदकी तरह भक-से जल उठे, "अभागा नालायक कहींका, मेरा ही खायगा-पहनेगा और मुझसे ही मुकदमा लड़ेगा? तुझे मैं एक दमड़ीकी भी जमीन-जायदाद नहीं देनेका,—दूर हो मेरे घरसे, अभी जा यहाँसे,—एक मिनटकी भी देर मत कर,—इन्हीं कपड़ोंसे निकल जा।—"

रमेशने न तो कोई बात कही और न मुँह उठाकर भाईकी तरफ देखा ही; जैसे खड़ा था वैसे ही बाहर निकल गया। भइयाकी वह जैसे भक्ति और सम्मान करता था, वैसे ही उन्हें पहचानता भी था। इस तिरस्कारकी निस्सारताका पूरा पूरा अनुभव करके वह उसी वक्त चुपचाप चला गया।

तब शैलजाने आकर दूरसे गलेमें आँचल डालकर प्रणाम किया।

गिरीशने आशीर्वाद देकर कहा, "आओ, आओ बेटी, आओ।" उनके इस स्वरमें न तो कोई गरमी थी, न जलन। बाहरसे कोई अपरिचित आता तो नहीं कह सकता कि यही आदमी क्षण-भर पहले इस तरह चिल्ला रहा था।

गिरीशकी निगाहमें कभी कोई बात नहीं आया करती, मगर आज, मालूम नहीं कैसे, उनकी दृष्टि-शक्तिको आश्चर्यजनक निपुणता प्राप्त हो गई। वे शैलजाको देखकर बोले, "तुम्हारे शरीरपर गहने क्यों नहीं दीख रहे हैं, छोटी बहू?"

छोटी बहू सिर झुकाये चुपचाप खड़ी रही।

गिरीशका कण्ठस्वर फिर एक एक पर्दा ऊँचा चढ़ने लगा, "उसी अभागे सूअरने बेच खाया है! गहने किसके हैं? मेरे हैं! उसे मैं जेल भिजवाकर छोड़ूँगा।" इत्यादि इत्यादि।

\+ \+ \+ \+

सतमी मुकद्दमेकी पेशीका दिन था। शामके वक्त हरीश स्याह चेहरा लिये हुगलीकी अदालतसे घर लौट आया और कपड़े-लत्ते बिना उतारे ही बिस्तरपर पड़ रहा।

नयनतारा रुआसी होकर हजारों प्रश्न करने लगी; खबर पाकर सिद्धेश्वरी भी दौड़ी आई। मगर हरीश आते ही करवट लेकर इस तरह चुपचाप पड़ रहा कि फिर उसके मुँहसे कोई कुछ भी जवाब न निकलवा सका।

मुकद्दमेमें हार हो गई है, इसमें तो किसीको कोई सन्देह रहा ही नहीं। दोनों देवरानी-जिठानी बराबर समझाने लगीं—मुकद्दमेमें हार-जीत तो है ही, इसके सिवा अभी तो हाईकोर्ट है, विलायतमें अपील करना बाकी है,—अभीसे ऐसे हाथ-पैर ढीले कर बैठनेकी तो कोई वजह नहीं।

परन्तु आश्चर्य यह कि इन दोनों स्त्रियोंको जितनी आशा थी, जितना भरोसा था, खुद वकील होकर भी हरीशमें उसका कणमात्र न दिखा।

जब असह्य हो उठा तब सिद्धेश्वरीने हरीशको हिलाकर कहा, "लालाजी, मैं कहती हूँ कि तुम लोगोंकी हार नहीं होगी। जितना रुपया लगे मैं दूँगी,—तुम हाईकोर्ट लड़ो। मैं आशीर्वाद देती हूँ, तुम अवश्य जीतोगे।"

इतनी देरमें हरीशने करवट बदलकर सिर हिलाते हुए कहा, "नहीं भाभीजी, सो अब नहीं हो सकता,—सब खतम हो चुका है। हाईकोर्ट जाओ, चाहे विलायत लड़ो,—अब कोई रास्ता नहीं है। जायदाद सब भाईके नामसे खरीदी हुई थी। वहाँ ब्याहमें गये थे, सो वे अपना सर्वस्व छोटी बहूके नाम दान कर आये हैं,—रजिस्ट्री तक हो चुकी है। देशकी तरफ तो अब मुँह करनेका भी रास्ता नहीं रहा।"

देवरानी जिठानी दोनोंकी दोनों एक दूसरेकी तरफ देखतीं पत्थरकी मूर्तिकी तरह बैठी रह गईं।

शामके बाद गिरीशके अदालतसे लौट आनेपर जो काण्ड हुआ उसका तो वर्णन ही नहीं हो सकता। ज्ञान-हीन पागलपन कहकर उनका तिरस्कार करनेमें किसीने कसर नहीं छोड़ी।

मगर गिरीश सबके विरुद्ध खड़े होकर क्रमसे समझाने लगे कि इसके सिवा और कोई रास्ता ही न था। अभागा, बदमाश, नालायक छोटी बहूको लेकर

जाता,—देशका सात पीढ़ीका घर-द्वार तक लुप्त हो जाता। सब बातोंपर विशेष विचार करके ही मैं मुकर्जी-वंशकी बोझसे लदी हुई नावकी 'निष्कृति' कर आया हूँ,—उसे बचानेकी तजवीज कर आया हूँ।

सिर्फ सिद्धेश्वरी एक किनारे स्तब्ध होकर चुपचाप बैठी थीं, भली-बुरी कोई भी बात अब तक उन्होंने अपने मुँहसे नहीं कही थी। सबके चले जानेपर वे उठके पतिके सामने आ खड़ी हुईं। आँखोंमें अब भी आँसू छलक रहे थे। पतिके पैरोंपर अपना माथा रखकर पाँवकी धूल माथेसे लगाकर उन्होंने धीरेसे कहा, "आज तुम मुझे माफ करो; जिसके मुँहमें जैसी आई तुम्हें गालियाँ गये जरूर, पर तुम उन सबोंसे कितने बड़े हो इस बातको मैंने आज जैसा समझा है, वैसा पहले कभी नहीं समझा था!"

गिरीश अत्यन्त प्रसन्न होकर बार बार सिर हिलाते हुए कहने लगे, "देखा बड़ी बहू, मेरी सब तरफ निगाह रहती है या नहीं? रमेश कलका छोकरा है, वह भला मेरी आँखोंमें धूल झोंककर मेरी इतनी मेहनतकी कमाई नष्ट-कर देगा! ऐसे कायदेसे उसे बाँध आया हूँ कि अब वहाँ बच्चूकी एक भी चालाकी नहीं चलनेकी!" इतना कहकर न जाने अपनी किस हँसीकी बातपर उन्होंने खुद ही कहकहा लगा कर घर भर दिया।

